* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

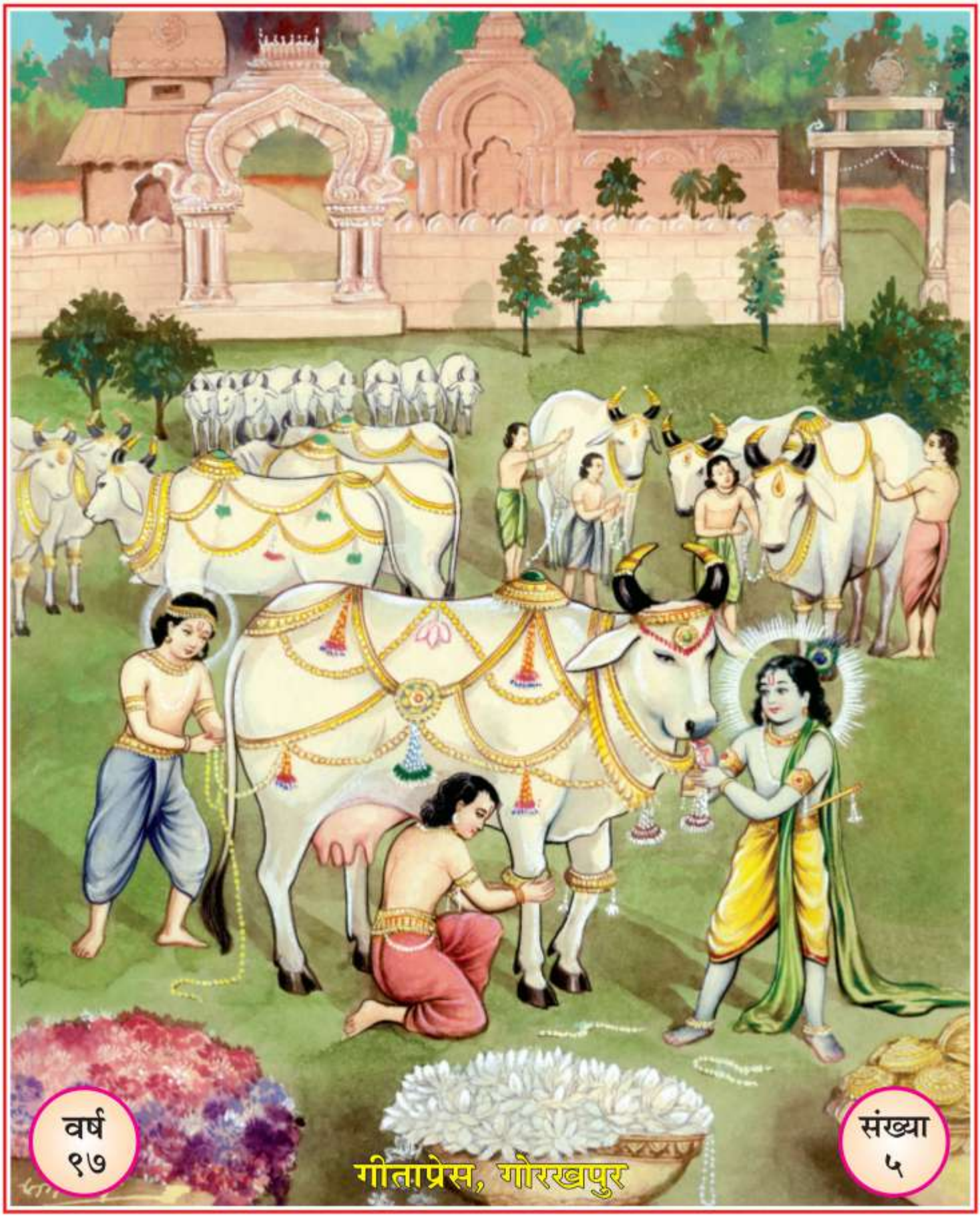

गायोंका श्रृंगार करते सखाओंसहित गोपाल

देवर्षि नारद

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥
[रामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, मई २०२३ ई०

संख्या ५

पूर्ण संख्या ११५८

भगवान्‌की लीलाओंके गायक—देवर्षि नारद

कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः। शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः॥
सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थायेदं सिसृक्षतः। मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे॥
अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन् पर्येम्यस्कन्दितव्रतः। अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित्॥
देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम्। मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम्॥
प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः। आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥

[**नारदजी कहते हैं—**] कल्पके अन्तमें जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव (प्रलयकालीन समुद्र)-के जलमें शयन करते हैं, उस समय उनके हृदयमें शयन करनेकी इच्छासे इस सारी सृष्टिको समेटकर ब्रह्माजी जब प्रवेश करने लगे, तब उनके श्वासके साथ मैं भी उनके हृदयमें प्रवेश कर गया। एक सहस्र चतुर्युगी बीत जानेपर जब ब्रह्मा जगे और उन्होंने सृष्टि करनेकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषियोंके साथ मैं भी प्रकट हो गया। तभीसे मैं भगवान्‌की कृपासे वैकुण्ठादिमें और तीनों लोकोंमें बाहर और भीतर बिना रोक-टोक विचरण किया करता हूँ। मेरे जीवनका व्रत भगवद्भजन अखण्डरूपसे चलता रहता है। भगवान्‌की दी हुई इस स्वरब्रह्मसे विभूषित वीणापर तान छेड़कर मैं उनकी लीलाओंका गान करता हुआ सारे संसारमें विचरता हूँ। जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरणकमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरन्त मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं। [**श्रीमद्भागवतमहापुराण**]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, मई २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक ५

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान्‌की लीलाओंके गायक—देवर्षि नारद	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- गोपालकी गो-पूजा [**आवरणचित्र-परिचय**]	७
५- भगवत्प्राप्तिके दस उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- रसोईघर अन्नपूर्णामाताका मन्दिर है (गोलोकवासी परम भागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)	९
७- भक्तिके साधन (नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१०
८- साधकोंको उद्‌बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	११
९- सुगम साधन [**साधकोंके प्रति**] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१२
१०- मनसे किया त्याग ही त्याग है (स्वामी श्रीसंवित् सुबोधगिरिजी)	१६
११- आदर्श जीवनकी संजीवनी है—'श्रीरामचरितमानस' (श्रीमदनमोहनजी अग्रवाल)	१७
१२- जगदम्बा सतीजीकी मोह-लीला (डॉ० श्रीरमेशमंगलजी वाजपेयी)	२०
१३- अन्तर्दृष्टि (पं० श्रीत्रिलोकीनाथजी उपाध्याय)	२१
१४- श्रीमद्भगवद्‌गीताकी विलक्षणता एवं सहजता (श्रीसुरेशजी शर्मा)	२३
१५- श्रीरामका रूप एवं शील (प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत)	२४
१६- श्रीराधामाधव-चिन्तन (डॉ० श्रीराजेशजी शर्मा)	२७
१७- वेदपुराणान्तर्गत पर्यावरण-संरक्षण-व्यवस्था (डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी श्रीवास्तव, साहित्यवाचस्पति)	३०
१८- हिन्दू-संस्कृतिकी एक झलक	३३
१९- 'माधौ! नैक हटकौ गाइ' (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	३४
२०- त्रिपुराका उनाकोटि शिवलोक [**तीर्थ-दर्शन**] (श्रीरामजी शास्त्री)	३६
२१- नामका आश्रय [**कहानी**] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	३८
२२- ऋतु-अनुसार खान-पान उत्तम स्वास्थ्यका आधार (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)	४२
२३- सुभाषित-त्रिवेणी	४४
२४- व्रतोत्सव-पर्व [**आषाढ़मासके व्रत-पर्व**]	४५
२५- कृपानुभूति	४६
२६- पढ़ो, समझो और करो	४७
२७- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- गायोंका शृंगार करते सखाओंसहित गोपाल	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- देवर्षि नारद	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- गायोंका शृंगार करते सखाओंसहित गोपाल	(इकरंगा)	७
४- सीताके विरहमें व्याकुल श्रीरामको प्रणाम करते भगवान् शिव	(,,)	२०
५- त्रिपुराका उनाकोटि शिवलोक	(,,)	३६

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।

॥ श्रीहरिः ॥

यह जगत् नाम और रूपकी चारों ओर फैली मायाके सिवा और कुछ नहीं—ऐसा तत्त्वदर्शी सन्तोंका अनुभव है। नाम केवल प्राणी-पदार्थोंको पहचाननेका साधनमात्र है, तत्त्वतः उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं। यह संयोगमात्र है कि किसी वस्तु या व्यक्तिको क्या नाम मिल जाय। वह भी सभी देश-कालमें एक-जैसा नहीं होता।

यही हाल रूपका है। प्रतिक्षण रूपमें परिवर्तन होता रहता है। बाल-युवा-वृद्धके रूपमें एक ही व्यक्तिको पहचानना कठिन होता है। कालका प्रभाव रूपको परिवर्तित कर देता है।

इस बदलते संसारमें यदि नाम-रूपको अविनाशी ईश्वरसे जोड़कर देखें तो इस मायासे पार पाया जा सकता है। एक सन्त कहा करते थे—'यह संसार ठाकुरजीका जादू है। इसका मजा लीजिये, फँसिये मत।'

—सम्पादक

कल्याण

याद रखो—जबतक शरीर, नाम और संसारके प्राणिपदार्थोंमें 'अहंता' और 'ममता'—'मैं' और 'मेरा'पन है, तबतक तुम कभी सुखी नहीं हो सकते; क्योंकि शरीर, नाम तथा संसारके प्राणिपदार्थ सभी अपूर्ण हैं और क्षणभंगुर हैं एवं अपूर्ण तथा क्षणभंगुर वस्तुसे कभी सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उसमें अपूर्णताको पूर्ण करनेकी वासना तथा प्राप्त वस्तुके विनाशकी आशंकाका दु:ख नित्य बना रहता है।

याद रखो—जबतक शरीरमें 'मैं'पन तथा संसारके प्राणिपदार्थों में 'मेरापन' है, तबतक तुम्हारी मलिन दीनता और तुम्हारा मलिन अभिमान—दोनों ही सदा तुम्हारे अन्दर रहेंगे और तुम्हें अशान्त तथा दुखी बनाते रहेंगे। जैसे महान् आकाशमें दीवाल तथा छत बन जानेसे आकाशका वह घिरा हुआ अंश कोई कमरा बन जाता है और वह किसीसे छोटा तथा किसीसे बड़ा हो जाता है; जहाँ छोटा है, वहाँ उसमें अपनेको छोटा मानकर दूसरे बड़ोंके सामने दीन होना पड़ता है और जहाँ बड़ा है, वहाँ उसमें अपनेको दूसरोंसे बड़ा मानकर अभिमान आ जाता है। संसारके प्राणिपदार्थ भी, चाहे कितने ही किसीकी 'ममता' की वस्तु बने हुए हों, वे दूसरोंसे किसीसे कम और किसीसे अधिक होंगे ही। इसलिये उनको लेकर भी दीनता और अभिमान बने रहेंगे; जो हीनता, ईर्ष्या, द्वेष, मद, गर्व, परापमान, पर-निन्दाके रूपमें परिणत होते हुए नये-नये दु:खोंको उत्पन्न करते रहेंगे।

याद रखो—जबतक शरीरमें अहंता और प्राणि-पदार्थोंमें ममता है, तबतक संसारके बन्धनसे कभी मुक्ति नहीं मिलेगी। नये-नये शरीरोंकी प्राप्ति और ममताकी वस्तुओंका संयोग-वियोग बना ही रहेगा और इसलिये तुम आत्यन्तिक सुखसे सदा वंचित ही रहोगे।

याद रखो—दु:खोंके आत्यन्तिक नाश तथा नित्य और आत्यन्तिक अभिन्न ब्रह्म-सुखका साक्षात्कार करनेके लिये तुमको मानव-शरीर मिला है, इससे अवसर रहते ही लाभ उठाना चाहिये। इसलिये तुम या तो शरीरको जड़, उपाधिरूप, अनित्य, विनाशी और असत् मानकर उसमेंसे 'मैं'पन हटा लो और प्राणिपदार्थोंको माया-कल्पित, स्वप्नदृश्यके सदृश मानकर ममताका आधार ही नष्ट कर दो। 'अहं'को नित्य, सत्य, सहज, अविनाशी, त्रिकालाबाधित, परम तत्त्व आत्मामें या ब्रह्ममें स्थापित कर दो, जैसे कमरेका छोटा आकाश—अपने पृथक् तथा छोटेपनके मिथ्या ज्ञानको हटाकर विचारके द्वारा महाकाशमें अहंताका सत्य साक्षात्कारकर उसमें एकत्वको प्राप्त हो जाता है, वैसे ही तुम भी अपने पृथक् जीवभावका आधार मिथ्याज्ञान मानकर उससे छूट जाओ और सदा अभिन्न एकमात्र नित्य शुद्ध-बुद्ध-आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाओ और संसारके तमाम प्राणिपदार्थोंका भी उसी स्वरूपमें साक्षात्कार करो। ऐसा होनेपर तुम मिथ्या अहंता-ममतासे मुक्त होकर अपने नित्य सत्य स्वरूपभूत पूर्ण, अखण्ड, असीम, ज्ञान और चेतनस्वरूप आत्मानन्दका साक्षात्कार कर सकोगे—स्वयं अपने सच्चिदानन्दस्वरूपमें स्वरूपभूत बन जाओगे।

याद रखो—इसी प्रकार तुम अपनी अहंताको भगवान्के अनन्य दासत्वमें और ममताको एकमात्र भगवान्के मंगलमय चरणारविन्दमें केन्द्रित करके कृतार्थ हो जाओ। यह निश्चय कर लो कि एकमात्र भगवान् तुम्हारे नित्य सत्य सुहृद् स्वामी हैं, उनके मधुर मनोहर चरण-सरोज ही एकमात्र तुम्हारी ममताके वस्तु हैं और उनका बिना किसी बदलेकी इच्छाके, बिना किसी शर्तके सहज सोल्लास उनका सेवन ही तुम्हारे जीवनका स्वभाव है। ऐसा कर सकोगे तो अपूर्ण तथा विनाशी शरीर, नाम एवं प्राणिपदार्थोंसे परे नित्य-सत्य-पूर्ण-अनन्त-सुखमय भगवान्का सेवन करनेसे तुम आत्यन्तिक सुखको प्राप्त कर सकोगे।

याद रखो—फिर तुम्हारी सांसारिक वस्तुओंके अभावसे उत्पन्न मलिन दीनता नष्ट हो जायगी और क्षणभंगुर पदार्थोंकी प्राप्तिसे उत्पन्न मलिन अभिमान मिट जायगा। तुम्हारे अन्दर दिव्य दैन्यका प्रादुर्भाव होगा, जो तुमको सर्वथा अकिंचन बनाकर भगवान्का प्रिय बना देगा और वह दिव्य अभिमान प्रकट हो जायगा, जो तुम्हें भौतिक जरा-मरणसे मुक्त करके अपने परम सुहृद् सेवकवत्सल सर्वलोकमहेश्वर भगवान्के सेवकके—पार्षदके पदपर नित्य प्रतिष्ठित कर देगा। 'मित्र'

आवरणचित्र-परिचय—

गोपालकी गो-पूजा

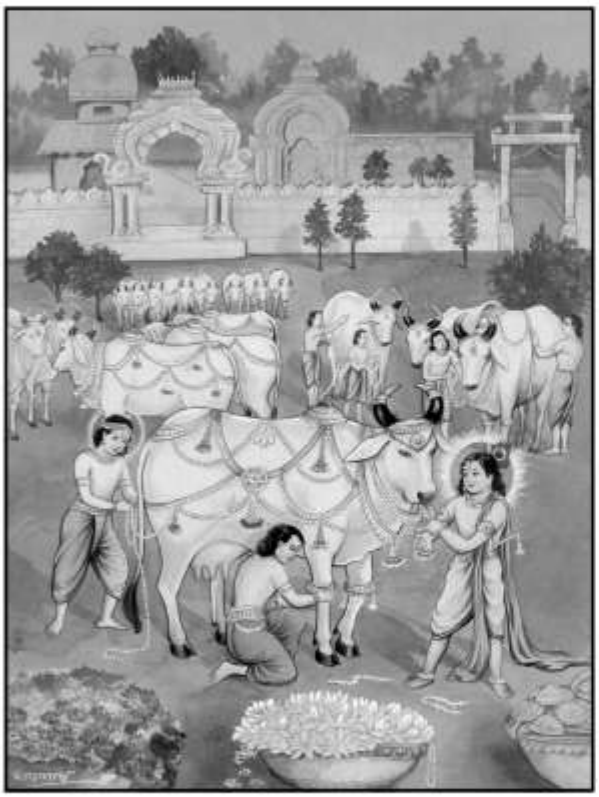

भगवान्‌के अवतारके अनेक उद्देश्योंमें गायोंकी पूजा एवं संरक्षण भी एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, क्योंकि गायोंके अन्दर सभी देवताओंका निवास है। गाय सर्वदेवमयी है। गायकी पूजासे सभी देवताओंकी पूजा हो जाती है तथा उनका आशीर्वाद भी प्राप्त हो जाता है। इस संसारमें गायका माँ-जैसा ही स्थान है; क्योंकि वह माँकी तरह ही वात्सल्यकी साकार मूर्ति है। इसीलिये गोपालने अपना बचपन गो-पूजासे आरम्भकर अपना गोपाल नाम सार्थक किया।

गोपालको गायें अत्यन्त प्रिय थीं। वे उनकी खूब सेवा करते थे। एक दिन भगवान् श्रीकृष्णने अपने सखाओंसे कहा—'मित्रो! संसारमें गाय-जैसा उपकारी और कोई नहीं है। यह हमें अमृतके समान दूध, दही, घी देकर माँकी तरह हमारा पोषण करती है, अतः यह माँकी तरह वन्दनीया तथा पूजनीया है। आज गोपाष्टमी है। हमलोग गोमाताका खूब अच्छी तरह फूलों तथा रत्नोंसे शृंगार करेंगे। उन्हें नाना प्रकारके पकवान अर्पित करेंगे तथा सभी उपचारोंसे उनकी भलीभाँति पूजा करेंगे। संसारमें गो-सेवा और गो-पूजासे बड़ा और कोई पुण्य नहीं है तथा उनके आशीर्वादसे बड़ा देव-मुनि किसीका आशीर्वाद नहीं है। गायोंकी पूजा ईश्वर-पूजा है, इनकी सेवा और पूजा करनेवालेको संसारकी कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। इसलिये आज हम सब इन वात्सल्यमयी गो-माताओंकी सेवा करके इनके अनन्त उपकारोंके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करेंगे।'

गोपालके आदेशकी देर थी कि सभी गोपबालकोंने गेंदा, मालती, गुड़हल, कमल आदि अनेक प्रकारके पुष्पोंका ढेर लगा दिया। सब लोगोंने मिलकर गायोंका विविध प्रकारसे शृंगार किया, उन्हें अनेक प्रकारके हार तथा फूल-मालाएँ पहनायीं तथा उनके गलेमें मधुर ध्वनि करनेवाली घंटियाँ बाँधीं। भगवान् श्यामसुन्दरने स्वयं गायोंको सजाया तथा उन्हें नाना प्रकारके पकवान खिलाये। सभी गायोंने शान्त भावसे खड़ी होकर उनकी पूजा ग्रहण की तथा मन-ही-मन अपने मूक आशीर्वादोंसे ग्वालबालोंकी झोलियाँ भर दीं। अन्तमें सभी ग्वालबालोंके साथ गोपालने गायोंसे बचा हुआ प्रसाद बड़े ही प्रेमसे ग्रहण किया।

श्याम खरिक के द्वार करावत गायनको सिंगार।
नाना भाँति सींग मण्डित किये ग्रीवा मेले हार॥
घंटा कण्ठ मोतिनकी पटियाँ पीठनको आछे ओछार।
किंकिणि नूपुर चरण विराजत बाजत चलत सुढार॥
यह विध सब व्रज गाय सिंगारी शोभा बढ़ी अपार।
परमानन्द प्रभु धेनु खेलावत पहिरावत सब ग्वार॥

भगवान् कृष्णकी गायोंके सुन्दर स्वरूप और शृंगारका वर्णन करते हुए महर्षि गर्गजी लिखते हैं—

कोटिशः कोटिशो गावो द्वारि द्वारि मनोहराः।
श्वेतपर्वतसङ्काशा दिव्यभूषणभूषिताः॥
घण्टामञ्जीरसंरावाः किङ्किणीजालमण्डिताः।
हेमशृङ्ग्यो हेमतुल्यहारमालाः स्फुरत्प्रभाः॥

अर्थात् वहाँ द्वार-द्वारपर कोटि-कोटि मनोहर गौओंके दर्शन होते हैं। वे गौएँ दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं और श्वेत पर्वतके समान प्रतीत होती हैं। उनके घंटों तथा मंजीरोंसे मधुर ध्वनि होती रहती है। किंकिणीजालोंसे विभूषित उन गौओंके सींगोंमें सोना मढ़ा गया है। वे सुवर्ण-तुल्य हार एवं मालाएँ धारण करती हैं। उनके अंगोंसे प्रभा छिटकती रहती है।

भगवत्प्राप्तिके दस उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्य-जीवनका उद्देश्य भगवान्‌को प्राप्त करना है। शास्त्रों और सन्त-महात्माओंने इसके लिये अनेकों उपाय बतलाये हैं। अपने-अपने अधिकार और रुचिके अनुसार किसी भी शास्त्रोक्त उपायको निष्कामभावसे अर्थात् सांसारिक सुख-प्राप्तिकी कामनाको छोड़कर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ काममें लानेसे यथासमय मनुष्य भगवत्‌को प्राप्त होकर अपने जन्म और जीवनको सार्थक कर सकता है। भगवान् श्रीमनु महाराजने धर्मके दस लक्षण बतलाये हैं, इन दस लक्षणोंवाले धर्मका निष्काम आचरण करनेवाला मनुष्य मायाके बन्धनसे छूटकर भगवान्‌को पा सकता है—

दस उपाय

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ६।९२)

अर्थात्—

धृति, क्षमा, शम, शौच, दम, विद्या, धी, अक्रोध।
सत्य अचोरी धर्म दस, देते हैं मनु बोध॥

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार समझना चाहिये—

१-धृति—किसी प्रकारका भी संकट आ पड़नेपर या इच्छित वस्तुकी प्राप्ति न होनेपर धैर्यको न छोड़ना। जो धीरजको धारण किये रहता है, उसीका धर्म बचता है और वही लौकिक और पारलौकिक सफलता प्राप्त कर सकता है।

२-क्षमा—अपने साथ बुराई करनेवालेको दण्ड देने-दिलानेकी पूरी शक्ति रहनेपर भी उसको दण्ड देने-दिलानेकी भावनाको मनमें भी न लाकर उसके अपराधको सह लेना और उसका अपराध सदाके लिये मिट जाय, इसके लिये यथोचित चेष्टा करना, इसको क्षमा कहते हैं।

३-दम—साधारणतः इन्द्रिय-निग्रहको दम कहते हैं, परंतु इस श्लोकमें इन्द्रिय-निग्रह अलग कहा गया है, इससे यहाँ 'दम' शब्दसे शमको अर्थात् मनके निग्रहको लेना चाहिये। मनको वशमें किये बिना भगवत्‌की प्राप्ति प्रायः असम्भव है। (गीता ६। ३६) भगवान्‌ने अभ्यास और वैराग्यसे मनका वशमें होना बतलाया है। (गीता ६। ३५)

४-अस्तेय—मन, वाणी, शरीरसे किसी प्रकारकी चोरी न करना।

५-शौच—बाहर और भीतरकी शुद्धि—सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यापारसे द्रव्यकी, उसके अन्नसे आहारकी, यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल, मिट्टी आदिसे की जानेवाली शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं। एवं राग-द्वेष, दम्भ-कपट तथा वैर-अभिमान आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि कहलाती है।

६-इन्द्रिय-निग्रह (दम)—इन्द्रियोंको उनके विषय, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शमें इच्छानुसार न जाने देकर अनिष्टकारी विषयोंसे हटाये रखना और कल्याणकारी विषयोंमें लगाना।

७-धी (बुद्धि)—सात्त्विकी श्रेष्ठ बुद्धि, जो सत्संग, सत्-शास्त्रोंके अध्ययन, भगवद्भजन और आत्मविचारसे उत्पन्न होती है तथा जिससे मन परमात्मामें लगता है और यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है।

८-विद्या—वह अध्यात्मविद्या, जिसको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है और जो मनुष्यको अविद्यासे छुड़ाकर परमात्माके परमपदको प्राप्त कराती है।

९-सत्य—यथार्थ और प्रिय भाषण। अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे जैसा निश्चय किया हो, वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना तथा यह ध्यानमें रखना कि इससे किसी निर्दोष प्राणीका नुकसान तो नहीं हो जायगा। सत्य वही है, जो यथार्थ हो, प्रिय हो, कपटरहित हो और किसीका अहित करनेवाला न हो।

१०-अक्रोध—अपनी बुराई करनेवालेके प्रति भी मनमें किसी प्रकारसे क्रोधका विकार न होना। अक्रोध और क्षमामें यही भेद है कि अक्रोधसे तो कोई क्रिया नहीं होती, जो कुछ होता है, मनुष्य सब सह लेता है, मनमें विकार पैदा नहीं होने देता, परंतु इससे हमारी बुराई करनेवालेका अपराध क्षमा नहीं होता, उसका फल उसे न्यायकारी ईश्वरके द्वारा लोक-परलोकमें अवश्य मिलता है। क्षमामें उसका अपराध भी क्षमा हो जाता है।

रसोईघर अन्नपूर्णामाताका मन्दिर है

(गोलोकवासी परम भागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

ये महँगाई क्यों हुई है? लोग भगवान्‌को भोग लगाते नहीं हैं, भगवान्‌को अर्पण किये बिना खाते हैं—इसीलिये महँगाई है। पृथ्वीके पति परमात्मा हैं। पृथ्वी धर्मके लिये अन्न उत्पन्न करती है। बछड़ा हो जाय तो ही गाय दूध देती है। गायमें दूध होता है—बछड़ा न हो जाय तो गाय सब दूध पी जाती है। गाय जिस प्रकार बछड़ेके लिये दूध देती है—वैसे ही, धरती धर्मके लिये अन्न उत्पन्न करती है। जहाँ धर्म है—वहाँ धरती सब कुछ देती है। भारतभूमि स्वर्णभूमि है—इस भूमिमें हीरा, माणिक, सोना भरा हुआ है। भारतमें कभी दुष्काल आये ही नहीं! वेदोंमें तो ऐसा वर्णन है कि भारतमें दूधकी, घीकी नदियाँ बहती थीं—**घृतस्य धारा अभि चाकशीमि।** जिस देशमें दूधकी नदियाँ बहती थीं, वहाँ दूध अब बोतलमें आने लगा है। थोड़े बरसोंके बाद लोग घी किसमें लायेंगे—कुछ खबर पड़ती ही नहीं! लोग अब धर्मका पालन नहीं करते हैं—धर्म छोड़ दिया है। धर्ममें श्रद्धा रही नहीं है। धर्मको जो छोड़ता है, उसको भगवान् छोड़ देते हैं।

घरमें पवित्रतासे रसोई करो। रसोईघरको पवित्र रखना चाहिये। रसोईघर अन्नपूर्णाजीका मन्दिर है। साधारण कोई मानव रसोईघरमें आये नहीं, अन्न-जलको छुए नहीं। स्पर्शसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं—रसोईघरको पवित्र रखो। बहुत-से लोग चप्पल पहन करके रसोईघरमें जाने लगे हैं—अपनेको बड़ा सयाना समझते हैं; ऐसा मानते हैं कि हम तो सुधरे हुए हैं। सुधरे हैं कि बिगड़े हैं—ये तो भगवान् ही जाने! रसोईघर अन्नपूर्णाजीका मन्दिर है—पवित्रतासे रसोई करो। कभी बाजारका खाना नहीं। बाजारका जो खाता है, उसकी बुद्धि बहुत बिगड़ती है। बाजारकी वस्तुमें अनेककी नजर पड़ती है—दृष्टिदोष आता है। बाजारकी वस्तुमें स्वच्छता भले ही हो जाय—पवित्रता जरा भी नहीं होती। छः महीनेतक बाजारका खाना छोड़ो, घरमें पवित्रतासे रसोई करो—भगवान्‌को भोग लगाओ। छः महीना पवित्र अन्न पेटमें जाय, फिर देखो—बुद्धि कैसी सुधरती है!

आजकल इन माताओंको रसोई करनेमें आलस्य आता है, सो बाजारका मँगाती हैं और बच्चोंको खिला देती हैं—बच्चोंकी बुद्धि बिगड़ जाती है। घरमें रसोई करना भक्ति है। कितनी माताएँ बाहर बहुत घूमती हैं—घरमें प्रेमसे रसोई करें तो भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।

कितनी माताएँ ऐसा समझती हैं कि मन्दिरमें जा करके काम करना 'भक्ति' है, घरका काम करना 'व्यवहार' है—ऐसा नहीं है। आपके घरके मालिक भगवान् हैं। घरके लोग भोजन करनेवाले हैं—ऐसा सोच करके जो रसोई करे तो यह 'व्यवहार' माना जाता है। अपने भगवान्‌के लिये मैं रसोई करता हूँ, भगवान् भोजन करनेवाले हैं—ऐसा हृदयमें प्रेम हो जाय तो रसोई करना 'भक्ति' है। वेदोंमें वर्णन आया है—**मोघमन्नं विन्दते अप्रचेतः, केवलाघो भवति केवलादी, केवलादी केवलं अघः भवति।** भगवान्‌के लिये जो पवित्रतासे रसोई करता है; मेरे भगवान् भोजन करनेवाले हैं—ऐसा हृदयमें भाव होना चाहिये। रसोईमें दो-चार घण्टेका जो समय जाता है; भगवान् मानते हैं कि यह रसोई नहीं कर रहा—मेरी भक्ति कर रहा है। भगवान्‌के लिये रसोई करो, पवित्रतासे रसोई करो, भगवान्‌को भोग लगाओ—आपके घरमें अन्नपूर्णाजीका अखण्ड वास होगा।

ये महँगाई कबसे हुई है? लोग टेबल-कुर्सियोंपर बैठकर खाने लगे, तभीसे महँगाई हुई है। परदेसका अनुकरण करते हैं। टेबल-कुर्सियोंके ऊपर बैठकर नहीं खाना चाहिये। पवित्र आसन हो, भगवान्‌को भोग लगाओ, अग्निमें आहुति दो—फिर अन्न अमृत हो जाता है। **अमृतस्य उपस्तरणमसि, अमृतस्य पिधानमसि, अमृतवद् भुञ्जीथ**—वेदोंमें वर्णन आया है, अन्नको अमृत बनाओ। भगवान्‌को भोग लगानेके बाद अन्न अमृत हो जाता है।

भगवान्‌की आँखोंमें अमृत है। भगवान् भोजन करते हैं, तब अन्नमें दिव्य स्वाद आता है। पवित्रतासे रसोई करो, भगवान्‌को भोग धरो, अग्निमें आहुति दो—अन्नको अमृत बना करके, पवित्र आसनमें बैठ करके, भगवान्‌का स्मरण करते हुए भोजन करो। छः महीना करके देखो। आपकी अन्तरात्मा बोलेगा—छः महीना पहले मेरा मन बहुत बिगड़ा हुआ था, अब थोड़ा मन सुधर गया है, अब पाप कम होता है। छः महीनेतक पवित्र अन्न पेटमें जाय तो बुद्धि सुधरती है।

भक्तिके साधन

(नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भक्तिके साधकोंके लिये यहाँ कुछ नियम लिखे जाते हैं। इनमेंसे जो साधक जितने अधिक नियमोंका पालन कर सकेंगे, उन्हें उतना ही अधिक लाभ होगा।

१-असत्य, चोरी, हिंसा, व्यभिचार, अभक्ष्य-भक्षण बिलकुल छोड़ दे।

२-दम्भ कभी न करें, भक्त बननेकी चेष्टा करें—दिखलानेकी नहीं।

३-कामनाका सब तरह त्याग करें, भजनके बदलेमें भगवान्‌से कुछ भी माँगे नहीं।

४-अष्टमैथुनका त्याग करें, पुरुष अपनी विवाहिता पत्नीसे और स्त्री अपने विवाहित पतिसे जहाँतक हो सके बहुत ही कम सहवास करे। दोनोंकी सम्मतिसे बिलकुल छोड़ दें तो सबसे अच्छी बात है।

५-स्त्री परपुरुष और पुरुष परस्त्रीका बिलकुल त्याग करे। जहाँतक हो एकान्तमें मिलना-बोलना कभी न करे।

६-मानकी इच्छा न करे, अपमानसे घबराये नहीं, दीनता और नम्रता रखे, कड़वा न बोले, किसीका भी बुरा न चाहे, परचर्चा-परनिन्दा न करे और किसीसे भी घृणा न करे।

७-रोगी, अपाहिज, अनाथकी तन-मन-धनसे स्वयं सेवा करे, अपनी किसी प्रकारकी सेवा भरसक किसीसे न कराये।

८-भरसक सभा-समितियोंसे अलग रहे, समाचारपत्र अधिक न पढ़े, बिलकुल न पढ़े तो और भी अच्छी बात है।

९-सबका सम्मान करे, सबसे प्रेम करे, सबकी सेवाके लिये सदा तैयार रहे।

१०-तर्क न करे, वाद-विवाद या शास्त्रार्थ न करे।

११-भगवान्, भगवन्नाम, भक्त और भक्तिके शास्त्रोंमें दृढ़ विश्वास और परम श्रद्धा रखे।

१२-दूसरेके धर्म या उपासनाकी विधिका विरोध न करे।

१३-दूसरोंके दोष न देखे, अपने देखे और उन्हें प्रकाश कर दे।

१४-माता, पिता, स्वामी, गुरुजनोंकी सेवा करे।

१५-नित्य सुबह-शाम दोनों वक्त ध्यान या मानसिक पूजा करे और विनयके पद गाये।

१६-प्रतिदिन भगवान्‌के नामका कम-से-कम पचीस हजार जप जरूर करे। नाम वही ले, जिसमें रुचि हो। '***हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥***' मन्त्रकी १६ मालामें इतना जप हो सकता है।

१७-कम-से-कम पन्द्रह मिनट रोज घरके सब लोग (स्त्री-पुरुष-बालक) मिलकर नियमितरूपसे तन्मय होकर भगवन्नाम-कीर्तन करें।

१८-भगवद्गीताके एक अध्यायका अर्थसहित नित्य पाठ करे।

१९-भगवान्‌की मूर्तिके प्रतिदिन दर्शन करे, पास ही मन्दिर हो और उसमें जानेका अधिकार हो तो वहाँ जाकर दर्शन करे, नहीं तो घरमें मूर्ति या चित्रपट रखकर उसीका दर्शन करे।

२०-जहाँतक हो सके, मूर्तिपूजा करे, स्त्रियोंको मन्दिरोंमें जानेकी जरूरत नहीं, वे अपने घरमें ठाकुरजीकी मूर्ति रखकर सोलह उपचारोंसे रोज पूजा कर लिया करें।

२१-संसारके पदार्थोंमें भोगदृष्टिसे वैराग्य और सबमें ईश्वरदृष्टिसे प्रेम करनेका अभ्यास करे।

२२-ईश्वर, अवतार, सन्त-महात्माओंपर कभी शंका न करे।

२३-यथासाध्य और यथाधिकार उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत (कम-से-कम ११वाँ स्कन्ध), महाभारत (कम-से-कम शान्ति और अनुशासनपर्व), वाल्मीकीय रामायण, तुलसीदासजीका रामचरितमानस, सुन्दरदासजीका सुन्दरविलास, समर्थ रामदासजीका दासबोध, भक्तमाल, भक्तोंके जीवनचरित आदि ग्रन्थोंको पढ़ना, सुनना और विचार करना चाहिये।

२४-भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीनरसिंह आदि अवतारोंके समयनिर्णय और उनके जीवनपर विचार आदि न करके उनका भक्तिभावसे भजन करना चाहिये। पेड़ गिननेवालेकी अपेक्षा आम खानेवाला लाभमें रहता है। थोड़े जीवनको असली काममें ही व्यय करना चाहिये।

साधकोंको उद्‌बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रीतिस्वरूप साधननिष्ठ!

हमें देखना चाहिये कि हमारा सम्बन्ध हमारी ओरसे किसके साथ है? परमात्माके साथ है या जगत्‌के साथ है? अच्छाईके साथ है या बुराईके साथ है? हमको क्या पसन्द आता है? अगर हमको परमात्माका सम्बन्ध अच्छा लगता है, तो संसारका सम्बन्ध अपने-आप ही टूट जायगा। अगर संसारका सम्बन्ध हमने तोड़ दिया है, तो परमात्मासे सम्बन्ध अपने-आप हो जायगा। तो आपके और परमात्माके बीच संसार पर्दा नहीं है, उससे सम्बन्ध पर्दा है।

माँग तीन प्रकारसे हो सकती है—कामनाको लेकर, लालसाको लेकर और जिज्ञासाको लेकर। भोगकी कामना, सत्यकी जिज्ञासा और ब्रह्मकी लालसा। 'जिज्ञासा' कहते हैं—जाननेकी इच्छा और कामना कहते हैं—भोगकी इच्छा। तो यह भोगकी कामना, सत्यकी जिज्ञासा और परमात्माकी लालसा—ये तीनों लक्षण जिसमें रहते हैं, उसे 'मैं' कहते हैं।

इन तीनोंमें जो कामना है, वह तो भूलसे उत्पन्न होती है और जिज्ञासा एवं लालसा स्वभावसे है। जो भूलसे उत्पन्न होती है उसकी निवृत्ति हो जाती है एवं लालसाकी प्राप्ति हो जाती है। इसलिये कामनाकी निवृत्ति, जिज्ञासाकी पूर्ति और परमात्माकी प्राप्ति मनुष्यको हो सकती है।

प्रेम करनेका कोई तरीका नहीं है, पर प्रेम करना सबको आता है। जीवनमें एक अनुभवकी बात यह है कि हम जिसको अपना मान लेते हैं, वह प्यारा लगता है और हम उसे अपना सब कुछ देनेको तैयार हो जाते हैं। परमात्मा अपना है, उसे अपना बना लें, तो वह प्यारा लगता है।

जब परमात्मा प्यारा लगता है, तो उसपर सर्वस्व अर्पण कर देते हैं। ईश्वरको हम अपना दिल दे बैठे हैं, तो फिर हमारे पास अपना क्या रह जायगा? मनुष्यके पास जब उसका दिल न रहे तो वह भक्त हो जाय, मुक्त हो जाय और शान्ति पा जाय।

आप सुनना और सीखना बन्द करें और जानना और मानना प्रारम्भ करें, तो काम बन जायगा। जाननेके स्थानपर 'मेरा कुछ नहीं है'—इसके सिवाय और कुछ नहीं जानना है और माननेके स्थानपर सिवाय परमात्माके और कोई माननेमें आता नहीं है।

जबतक तुम बुरे नहीं होते, बुराई नहीं पैदा होती मनमें कोई विकृति नहीं है। अपनेमें कोई खराबी हो तो ठीक करो, मन ठीक हो जायगा। तुम किसीको बुरा मत समझो, मनमें बुरी बात कभी नहीं आयगी। तुम किसीक बुरा मत चाहो, मनमें बुरी बात कभी नहीं आयगी। तुम किसीके साथ बुराई मत करो, मनमें बुरी बात कभी नही आयगी। हमारी भूल हमें मनमें दिखती है। भूल हम करते हैं और नाम मनका रख देते हैं। बुराई करनेवाल खुद दुखी रहता है।

अपनेको बुरा मानोगे तो बुराई करोगे। अपनेको भला मानोगे तो भलाई करोगे। और, भला-बुरा कुछ नहीं मानोगे तो परमात्मामें रहोगे।

अच्छाई और बुराई जब दोनों होती हैं, तब तो बनता है अहम्, परिच्छिन्नता बनती है। और, जब बुराई बिलकुल नहीं रही, अच्छा-ही-अच्छा रह जाता है, तो अहम्‌का नाश हो जाता है। द्वन्द्वमे अहम् बनता है, द्वन्द्वातीतमें अहम् नहीं बनता। मनुष्य सर्वांशमें बुरा नहीं हो सकता, पर सर्वांशमें भला हो सकता है।

गुरुवाणीसे जो सुना, उसे मान लिया—यह निदिध्यासन हो गया।

जिसके करनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो, जिसमें किसीक अहित न हो, जिसके बिना करे रह न सकते हों और जिसका सम्बन्ध वर्तमानसे हो—ऐसा काम ही 'जरूरी काम' होता है। ॐ आनन्द।

साधकोंके प्रति—

सुगम साधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रह्लादजी असुर-बालकोंको उपदेश देते हुए कहते हैं कि भगवान्‌की प्राप्तिमें क्या प्रयास है—'**कोऽति-प्रयासोऽसुरबालकाः**' (श्रीमद्भागवत ७।७।३८)? विषयोंकी एक बात ध्यान देनेकी है कि संसारकी वस्तुएँ सब देशमें सब समयमें नहीं हैं। उनकी प्राप्तिके लिये विशेष परिश्रम करना पड़ता है। परंतु परमात्मा सब देशमें हैं, सब कालमें हैं, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें हैं, सम्पूर्ण घटनाओंमें हैं। ऐसा कोई देश, काल, व्यक्ति, वस्तु नहीं है, जहाँ परमात्मा न हों। उनकी प्राप्तिमें तो केवल तीव्र इच्छाकी ही आवश्यकता है। जैसे हमारे पास कोई चीज हो तो उस तरफ दृष्टि घुमायी और देखी! परंतु परमात्माको देखनेके लिये दृष्टि घुमानेकी भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि परमात्मा बाहर-भीतर सब जगह हैं। इसलिये उनकी प्राप्तिकी इच्छा करो और उनको प्राप्त कर लो!

परमात्माकी प्राप्तिमें प्रयासकी आवश्यकता नहीं है। इसमें तो केवल अभिलाषाकी आवश्यकता है। वह अभिलाषा भी कठिन नहीं है। वास्तवमें वह अभिलाषा मनुष्यमात्रमें स्वतः-स्वाभाविक है; क्योंकि मनुष्यमात्र अपनेमें कमीका अनुभव करता है। परंतु उससे भूल यह होती है कि वह इसकी पूर्ति संसारसे करना चाहता है। संसारकी सब वस्तुएँ सभीको प्राप्त होती नहीं, हुई नहीं और होंगी भी नहीं तथा मिल भी गयीं तो रहेंगी नहीं। वस्तुएँ रह भी गयीं तो आप नहीं रहेंगे। उनसे वियोग तो अवश्य होगा। पहले भी वियोग था और बादमें भी वियोग होगा। बीचमें संयोग केवल दीखता है, वास्तवमें है नहीं। फिर भी हम उन वस्तुओंसे अपना सम्बन्ध मान लेते हैं और उनकी इच्छा करते हैं, यह बहुत बड़ी भूल है।

आपने शरीरके साथ एकता मान ली कि यह शरीर मैं हूँ और शरीर मेरा है, यह है खास गलती! आप शरीर नहीं हैं; क्योंकि यदि आप शरीर होते तो मरते ही नहीं शरीर (मुर्दा) पड़ा रहता है तो उसमें भी हम होते। परंतु न तो शरीर हमारे साथ जाता है और न शरीरके साथ हम रहते हैं। अतः अपनेको शरीर मानना भी गलत है और शरीरको अपना मानना भी गलत है। शरीरको हम जैसा रखना चाहें, वैसा रख नहीं सकते, इसपर हमारा वश नहीं चलता, फिर यह अपना कैसे? यदि शरीर अपना नहीं है तो फिर धन, सम्पत्ति, वैभव, कुटुम्ब आदि अपने कैसे? अतः संसार अपना नहीं है, अपने तो केवल भगवान् ही हैं—यह माननेमें क्या कठिनता है? संसारको अपना माननेसे ही जो वास्तवमें अपने हैं, उन परमात्माको अपना माननेमें कठिनता हो रही है।

परमात्मा अपने हैं—यह शास्त्र कहता है, और संसार अपना नहीं है—यह आपका अनुभव कहता है। यह बात भले ही आप अभी न मान सको, भले ही आपसे मानी नहीं जा रही हो; परंतु हिम्मत मत हारो। यह मत सोचो कि हम तो इस बातको मान नहीं सकते, भले ही हमारे माननेमें न आ रही हो, पर वास्तवमें 'मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है' यह बात है नहीं—इस बातको स्थिर रखो। आपके माननेमें आये चाहे न आये, अनुभव हो चाहे न हो—इसकी चिन्ता मत करो; परंतु इस बातको रद्दी मत करो।

शरीर 'मैं' नहीं है और 'मेरा' नहीं है—यह बात सच्ची है एवं मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरा है—यह बात भी सच्ची है। सच्ची होनेपर भी माननेमें नहीं आती तो यह हमारी एक कमजोरी है। हमारे न माननेसे सच्ची बात रद्दी (गलत) कैसे हो सकती है?

श्रोता—हम इस बातको रद्दी कैसे करते हैं?

स्वामीजी—इन्द्रियोंके द्वारा, बुद्धिके द्वारा हम जिन वस्तुओंको देखते हैं, उनको सच्ची और अपनी मान लेते हैं, इससे वह बात रद्दी हो जाती है। उन वस्तुओंमें अपनेपनका त्याग नहीं होता तो कोई बात नहीं; परंतु 'शरीर-संसार मेरे नहीं हैं' यही बात सच्ची है—इतना

तो न सही, पर 'भगवान् हमारे हैं, हम भगवान्के हैं'—यह बात सच्ची है। ब्रह्माजी भी इस विषयमें कह दें कि 'देखो, तुम संसारके हो और संसार तुम्हारा है, तुम भगवान्के नहीं हो और भगवान् तुम्हारे नहीं हैं', तो भी साफ कह दो कि 'महाराज! आपकी यह बात हम नहीं मानेंगे।' भले ही यह बात हमारे अनुभवमें न आयी हो, हमें पूरी न जँची हो; परंतु बात यह सच्ची है! भगवान् स्वयं कहते हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५।७) 'यह जीव मेरा ही अंश है।' सन्त-महात्मा भी यही कहते हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (रा०च०मा० ७।११७।२)। इसलिये मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ, मेरेपर आप इतनी कृपा करो कि आप मेरी बात आज मान लो। माननेसे भले ही आपमें कोई परिवर्तन न आये, पहलेकी तरह ही भूख-प्यास लगे, वैसे ही राग-द्वेष हों, पर कृपा करके इस बातको रद्दी मत करो। हम तो भगवान्के ही हैं—ऐसा मान लो, फिर अनुभव हो अथवा न हो, बोध हो अथवा न हो, इसकी परवाह मत करो। अन्तमें यह बात स्थिर हो जायगी; क्योंकि यह बात सच्ची है।

बिलकुल सच्ची बात है कि ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***। इसे माननेमें क्या जोर आता है? मानना तो आपको आता ही है; जैसे—आप किसीको अपना मित्र, गुरु आदि मान लेते हैं। इसी प्रकार न मानना भी आपको आता है; जैसे—पहले आप अपनेको कुँआरा मानते थे, पर विवाह हो जानेपर अपनेको कुँआरा न मानकर विवाहित मानने लग जाते हैं। यदि आप गृहस्थ छोड़कर साधु बन जाते हैं तो घर, परिवारको अपना मानना छोड़ देते हैं और गुरु महाराजको अपना मान लेते हैं। इसलिये मानना और न मानना—दोनों आपको आते हैं। मानने और न माननेकी विद्या सभीको आती है। अब इस विद्याको केवल भगवान्में लगाना है, संसारमें नहीं।

हमारेसे गलती यह होती है कि सुनते समय तो मान लेते हैं, पर फिर उसे उड़ा देते हैं और जो बात सच्ची नहीं है, उसे सच्ची मानने लग जाते हैं। एक और बातको हम भूल जाते हैं। वास्तवमें यदि आपने इस बातको दृढ़तासे मान लिया है, तो फिर भले ही यह याद न रहे। बिना याद किये भी यह स्वत: याद रहेगी। कैसे याद रहेगी? जैसे अभी आप मानते हैं कि हम वृन्दावनमें हैं, तो किसी भाई-बहनने 'मैं वृन्दावनमें हूँ'—इसकी एक भी माला फेरी है क्या? एक बार आपने इसे मान लिया, फिर इसे बार-बार याद रखते हो क्या? इसमें सन्देह होता है क्या? जब कभी कोई पूछे तो तुरन्त कह देते हो कि हम तो वृन्दावनमें हैं। इस तरह बिना याद किये भी आपके भीतर बात रहती है। इसकी भूल तो तब मानी जायगी, जब आप यह मानने लग जायँ कि मैं तो हरिद्वारमें हूँ। अत: याद न रहनेको मैं भूल नहीं मानता हूँ। 'मै भगवान्का हूँ'—यह याद न रहे तो यह भूल नहीं है; परंतु 'मैं भगवान्का नहीं हूँ, मैं तो संसारका हूँ'—यह मान लेना भूल है।

एक बार सच्चे हृदयसे अपनेको भगवान्का मान लेनेके बाद फिर चाहे बिलकुल याद मत रखो। अब तो याद रखना है भगवान्का नाम। भगवान्के नामका जप करो, स्मरण करो, कीर्तन करो, उनकी लीलाओंका ध्यान करो, उनके स्वरूपका चिन्तन करो—ये बातें करनेकी हैं। भगवान्को तो एक बार अपना मानकर छोड़ दो हम भगवान्के हैं—इसमें सन्देह मत करो, चाहे हमारे माननेमें आये या नहीं आये, उसका अनुभव हो चाहे नहीं हो, कोई परवाह नहीं।

बहुत-से लोग कह देते हैं कि तुम्हारे जीवनमें क्या फर्क पड़ा? फर्क चाहे कुछ न पड़े। न नापमें, न तौलमें, न रंगमें, न ढंगमें, कुछ फर्क न पड़े तो कोई बात नहीं परंतु 'हम तो मान नहीं सकते, हमें तो याद नहीं रहता, हम तो योग्य नहीं हैं, हम तो अधिकारी नहीं हैं, हम तो पात्र नहीं हैं, हमें तो गुरु नहीं मिले, हमें तो सन्त नहीं मिले; समय ठीक नहीं है, कलियुगका समय है, वायुमण्डल ठीक नहीं है, संग अच्छा नहीं है'—इन बातोंको लेकर इस बातको रद्दी मत करो। तरह-तरहकी युक्ति लगाकर आप इस बातको रद्दी करते रहोगे तो

सिद्धि हो ही जायगी। यह सिद्धि कुछ दिनोंमें भी हो सकती है, महीनोंमें भी हो सकती है, वर्ष भी लग सकते हैं। संसारका सुख लेते रहोगे तो बहुत समय लगेगा, पर अन्तमें सिद्धि होकर रहेगी।

खेती करनेवाला खेतमें बीज बोकर निश्चिन्त हो जाता है। वह बीज अपने-आप ही अंकुर देता है। यदि वह बार-बार बीजको बाहर निकालकर देखेगा तो अंकुर कभी नहीं आयेगा। एक कहानी आती है। एक आमका बगीचा था। उसमें बन्दर आम खाने लगे तो बागमें रखवाली करनेवालोंने उनको पत्थर मारकर भगा दिया। जाते-जाते बन्दरोंने एक-एक आम मुँहमें और एक-एक आम हाथमें ले लिया और भाग गये। उन सबने मीटिंग की कि ये दुष्ट हमें आम खाने नहीं देते। उनमेंसे कुछ समझदार बन्दर बोले कि वे अपने बगीचेमें आम कैसे खाने देंगे? यदि हम भी एक बगीचा लगा लें तो फिर हमें आम खानेसे कोई मना नहीं करेगा। उन्होंने सोचा कि गुठली तो है ही, इनका बगीचा लगा लें। गुठली गाड़ दें और पानी दे दें तो बगीचा तैयार हो जायगा, फिर खूब आम खायेंगे। सर्वसम्मतिसे प्रस्ताव पास हो गया। एक नदी बह रही थी, उसके किनारे गुठलियाँ गाड़ दीं। अब वे बार-बार गुठलियोंको निकालकर देखते हैं कि अभी आम हुआ कि नहीं और उनको पुनः गाड़ देते हैं। शामतक वे इसी प्रकार गुठलियोंको निकालते तथा गाड़ते रहे। क्या इस प्रकार आमकी खेती हो जायगी? खेती करनी हो तो बीज बोकर पानी दे दो और निश्चिन्त हो जाओ। जो अभी नहीं है, वह भी निश्चिन्त होनेसे पैदा हो जायगा, फिर जो सच्ची बात है, वह सिद्ध क्यों नहीं होगी? हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं—यह बात सच्ची और स्वतःसिद्ध है। इसको माननेमें क्या परिश्रम आता है? क्या जोर पड़ता है। क्या किसी विद्याकी आवश्यकता है? कोई योग्यता चाहिये? सीधी बात है कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं; हम संसारके नहीं हैं, संसार हमारा नहीं है। अब आप इसे आमकी गुठलीकी तरह उखाड़ें नहीं कि नहीं? अंकुर फूटा कि नहीं? फिर वृक्ष उग जायगा, आम भी लग जायँगे, सब बढ़िया हो जायगा। परंतु कृपा करो कि इस बातको हटाओ मत। यह भगवत्प्राप्तिका बहुत सुगम उपाय है और कुछ नहीं करना है। बस, 'मैं भगवान्‌का और भगवान् मेरे' इस निश्चयको अपनी तरफसे हटाना नहीं है।

ये भाई बैठे हैं; पहले ये अपनेको कुँआरा मानते थे। परंतु विवाह हो गया तो कहने लगे कि हम तो कुँआरे नहीं हैं। अब कोई पूछे कि तुम्हारा विवाह हो गया क्या? तो क्या यह कहोगे कि ठहरो, सोचने दो, इस साल तो नहीं हुआ, गये साल भी नहीं हुआ, बीस साल पहले हुआ था, हाँ-हाँ, याद आ गया, हो गया विवाह! ऐसा क्यों नहीं कहते? क्योंकि विवाह हो गया तो हो गया। यह मान्यता है। यदि स्वप्नमें भी कोई पूछे तो यही कहोगे कि विवाह हो गया। ऐसे ही 'मैं परमात्माका हूँ और परमात्मा मेरे हैं' यह बिना याद किये याद रहेगा। इसमें भूल नहीं होगी। भूल तब होगी, जब आप सोचेंगे कि मैं परमात्माका नहीं हूँ और परमात्मा मेरे नहीं हैं; क्योंकि मेरे आचरण अच्छे नहीं हैं, मेरे लक्षण अच्छे नहीं हैं, भगवान्‌पर विश्वास नहीं है, श्रद्धा नहीं है। यह बाधाएँ मत लगाओ। विश्वास नहीं हो, श्रद्धा नहीं हो, स्मरण नहीं हो, हमारेमें परिवर्तन नहीं हुआ हो, जीवन न सुधरा हो, कुछ भी न हुआ हो, फिर भी इस मान्यताको रद्दी मत करो कि मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं।

जो मेरी दृष्टिमें महापुरुष हैं, उनसे भी मैंने पूछा है। उन्होंने कहा है कि जो मनुष्य परमात्माको अपना मान लेता है,उसे जाननेकी जिम्मेवारी परमात्मापर आ जाती है; क्योंकि परमात्मा ही जना सकते हैं, हम नहीं जान सकते। जहाँ हम असमर्थ होते हैं, वहाँ भगवान्‌की सामर्थ्य काम करती है। कितनी बढ़िया बात है कि 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं, मैं संसारका नहीं और संसार मेरा नहीं—यह माननेकी योग्यता आपमें है। आपमें जितनी योग्यता है, उतनी आप लगा दें। जो नहीं

बल राम।' जितने अंशमें आप निर्बल हैं, उतने अंशमें भगवान्‌का बल काम करता है। परंतु जितने अंशमें आप सबल हैं, उतना बल आप नहीं लगाते तो इसमें दोष आपका है, इसकी जिम्मेवारी भगवान्‌पर नहीं है। किसीको तो आप अपना मान लेते हैं और किसीको अपना नहीं मानते—इस योग्यताको आप भगवान्‌में क्यों नहीं लगाते? आप जितना कर सकते हैं, उतनेकी ही आशा भगवान् आपसे करते हैं। जो आप नहीं कर सकते हैं, उसकी आशा भगवान् आपसे नहीं करते। एक छोटे बच्चेसे क्या आप आशा करते हैं कि वह एक गेहूँका बोरा उठा लाये? आप उतनी ही आशा करते हैं, जितना बच्चा कर सकता है। फिर भगवान् इतने भी ईमानदार नहीं हैं क्या? जो आप नहीं मान सकते, उसे आप मान लो—ऐसा भगवान् कहेंगे क्या? जो आप नहीं मान सकते, उतना मान लो, बस। यह जो साधन आज आपको बताया है, यह इतना सुगम और सरल है कि हरेक कर सकता है। पढ़ा-लिखा हो या अपढ़ हो, भाई हो या बहन हो, सदाचारी हो या दुराचारी हो, सद्‌गुणी हो या दुर्गुणी हो, सज्जन हो या दुष्ट हो, कैसा ही क्यों न हो, इसको मान सकता है।'

पतिव्रताके लिये कहा गया है—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

(रा०च०मा० ३।५।१०)

ये मेरे पति हैं—यह मान्यता दृढ़ होनेसे पति चाहे जैसा हो, वह पतिव्रता हो जायगी। रावण एक विशेष महात्मा था क्या? परंतु मन्दोदरीने अपने पातिव्रतधर्मका ठीक पालन किया, जिसके प्रभावसे वह रामजीकी महिमा जानती थी, जबकि रावण कहनेपर भी नहीं मानता था। उसमें इतना ज्ञान कहाँसे आया? यह ज्ञान आया पातिव्रतधर्मसे। क्या भगवान् कह सकते हैं कि तुम्हारा पति सदाचारी नहीं है; अतः तुम्हारा कल्याण नहीं होगा? नहीं कह सकते। वह सदाचारी नहीं है तो हम क्या करें? हमने अपने पातिव्रतधर्मका ठीक पालन किया है तो उसका पूरा माहात्म्य भगवान् देंगे—***'बिनु श्रम नारि परम गति लहई'*** उसपर नहीं है। इसकी जिम्मेवारी है—शास्त्रोंपर, सन्तोंपर, भगवान्‌पर। वह पातिव्रतधर्मका पालन करती है तो वह ऋषि-मुनियोंकी, सन्त-महात्माओंकी, भगवान्‌की आज्ञाका पालन कर रही है; अतः उनको उसका कल्याण करना पड़ेगा। पतिमें योग्यता नहीं है तो उसका क्या दोष? माता-पिताने विवाह कर दिया तो वह उसका पति हो गया। उसका दोष तो तब होगा, जब वह अपने पातिव्रतधर्मका पालन न करे। ऐसे ही 'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं' इस बातको आप न मानें तो यह आपका दोष है। परंतु यदि आप भीतरसे मानना चाहते हों और माना जाये नहीं, तो कोई परवाह नहीं। अपनी शक्ति पूरी लगा दें। कम-से-कम उलटी मान्यता मत करें, इस बातको रद्दी मत करें। यह आपको मार्मिक बात बतायी है।

'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं'—इतना मान लो, फिर आगे जो होना चाहिये, वह स्वतः होगा। इसको माननेके बाद निर्विकल्प हो जाओ। अब जितना उद्योग है, वह करो; नाम-जप करो, कीर्तन करो, सत्संग करो, स्वाध्याय करो, मन्दिरोंमें जाओ, श्रीविग्रहके दर्शन करो। जो कार्य भगवान्‌के, शास्त्रोंके विरुद्ध है, वह काम मत करो। जहाँतक अपना वश चले, जितना कर सकते हो, उतना करो। इस बातको हिलने-डुलने मत दो, चाहे विपत्ति आये, चाहे सम्पत्ति आये; कोई अनुमोदन करे या विरोध करे। यह बात सच्ची है; अतः हमने तो मान ली, मान ली। शेष सब सच्ची है।

अब प्रश्न हो सकता है कि हम ऐसा करें, पर भगवान्‌की प्राप्ति न हो तो? इसका उत्तर है कि इतने दिनोंमें आपने कौन-सा बढ़िया काम कर लिया, जिसमें घाटा पड़ जायगा? होगा तो लाभ ही होगा। आपमेंसे कोई बताये कि हानि क्या होगी? हानि कुछ होगी नहीं और धोखा मैं देता नहीं! इससे लाभ ही होगा; क्योंकि यह सच्ची बात है और सच्ची बात सिद्ध होकर ही रहेगी। झूठी बात कबतक रहेगी? शरीर-संसारको अपना माननेसे क्या ये अपने बन जायँगे? ये कभी अपने बने नहीं और बनेंगे नहीं; परंतु इनको अपना मानोगे तो

फिर सच्ची बात मानो तो इससे अच्छा यही है कि अभी मेरे कहनेसे मान लो। बताओ, इसमें क्या धोखा हो जायगा? और यदि धोखा हो भी जाय, तो इतनी बार धोखा खाया, एक बार मेरे कहनेसे भी खा लो! परंतु यदि आपमेंसे किसीको भी धोखा दीखता हो तो कह दो भाई! इसमें धोखा बिलकुल है ही नहीं। इसमें लाभके सिवा किंचिन्मात्र भी नुकसान नहीं है। यह केवल मैं ही नहीं कहता, स्वयं भगवान् भी कहते हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५।७) और सन्त-महात्मा भी कहते हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (रा०च०मा० ७।११७।२)। अतः इस बातको खूब दृढ़तासे पकड़ लो। यह सन्तोंका निर्णय किया हुआ सिद्धान्त है। सन्तोंने, महात्माओंने इसे करके देखा है और हम लोगोंपर कृपा करके इसे लिख दिया है, बता दिया। जैसे कोई पिता धन कमाकर लड़केको दे दे तो लड़केको क्या जोर आया? ऐसे ही सन्त-महात्माओंने यह कमाई हुई पूँजी हमें दे दी है। अब हमारा कर्तव्य है कि इसे सुरक्षित रखें, रद्दी न करें। रद्दी होता है देखनेसे और करनेसे। इन्द्रियोंसे, बुद्धिसे देखने और करनेको तो मानते हो सच्चा और भगवान्‌के, सन्त-महात्माओंके वचनोंको मानते हो कच्चा, यह गलती है। जो दीखता है, वह है नहीं। क्रिया भी नित्य नहीं है और उसका फल भी नित्य नहीं है। अतः इनके भरोसे सत्यका निरादर करके सत्यका गला मत घोटो, सत्यकी हिंसा मत करो। सत्यकी हिंसा करनेसे सत्यकी हिंसा नहीं होती, प्रत्युत अपनी ही हिंसा होती है, अपना ही पतन होता है। सत्य तो सत्य ही रहेगा। वह तो कभी मिटेगा नहीं—**'नाभावो विद्यते सतः'** (गीता २।१६)। आप उसको नहीं मानेंगे तो आपको लाभ नहीं होगा। इसलिये 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—इस बातको मान लो। यह बहुत सरल और ऊँचे दर्जेकी बात है। इससे सब कुछ हो जायगा।

मनसे किया त्याग ही त्याग है

(स्वामी श्रीसंवित् सुबोधगिरिजी)

बिहारमें महात्मा बुद्धके दर्शनके लिये सम्राट् श्रेणिक आये। वार्तालापके दौरान उन्होंने पूछा—'भन्ते! राज्यके राजकुमार महलोंमें निवास करते हैं,दसोंकी जमात उनकी सेवामें लगी रहती है, बहुत ही स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन करते हैं, सभी तरहकी सुख-सुविधाओंकी व्यवस्था उनके लिये की जाती है, फिर भी वे प्रसन्न नहीं रहते हैं। दूसरी ओर आपके भिक्षुओंको मैं देखता हूँ, इनको भिक्षामें जैसा भोजन मिल जाय, ग्रहण कर लेते हैं, निरन्तर पैदल भ्रमण करते हैं, घास-फूसकी जैसी भी कुटिया रहनेको मिल जाय, उसमें सहजतापूर्वक रह लेते हैं। इन सब अभावोंके बावजूद वे हरदम प्रसन्नचित्त रहते हैं। ऐसा क्यों?'

महात्मा बुद्धने उत्तर दिया—'राजन्! प्रसन्नता साधनोंकी उपलब्धता या उनकी प्रचुरतामें नहीं होती। प्रसन्नता तो जो उपलब्ध है, उसे पर्याप्त माननेसे मिलती है। इन भिक्षुओंने संकल्पपूर्वक साधनोंका त्याग किया है। जिसने भी संकल्पके साथ छोड़ा हो, वही प्रसन्न रह सकता है।'

एक भिखारी भी लगभग इन्हीं परिस्थितियोंमें जीता है, लेकिन उसके पास इन भिक्षुओंके जैसी प्रसन्नता नहीं मिलेगी। क्योंकि वह इन कमियोंको अपने जीवनका अभिशाप मानता है। उसने छोड़ा नहीं है, बल्कि उसे मिला नहीं है। जबकि इन भिक्षुओंने इन्हें वरदानके रूपमें अपनाया है। छोड़ने और छूटनेमें रात-दिनका अन्तर होता है। जिसे प्राप्त नहीं है, वह त्यागी नहीं होता। त्यागी वह होता है, जो अपने मनसे त्याग कर दे। वही प्रसन्न रह सकता है। अभावग्रस्त या साधन-सुविधासम्पन्न व्यक्ति प्रसन्न नहीं रह सकता; क्योंकि अभावग्रस्तको जरूरतके साधनोंकी प्राप्तिकी तथा सुविधासम्पन्नको अन्य साधनोंकी प्राप्तिकी आस लगी रहती है।

सम्राट्ने प्राप्त समाधानसे नतमस्तक हो महात्मा बुद्धको प्रणामकर महलोंकी ओर प्रस्थान किया।

आदर्श जीवनकी संजीवनी है—'श्रीरामचरितमानस'

(श्रीमदनमोहनजी अग्रवाल)

गोस्वामी तुलसीदासजीद्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस भारतीय संस्कृतिका प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यह आदर्श जीवनकी संजीवनी है। रामचरितमानसमें सामाजिक तथा पारिवारिक पारस्परिक सम्बन्धोंकी अत्यन्त ही आदर्शपूर्ण व्याख्या की गयी है, जो कि अनुकरणीय एवं प्रेरणादायक है।

सर्वप्रथम मित्रके सम्बन्धके बारेमें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने लिखा है कि जो मित्रको दुखी देखकर दुखी नहीं होता, उसे देखनेसे भारी पाप लगता है। अपने महान् दु:खको सामान्य तथा मित्रके सामान्य दु:खको भी बड़ा समझना चाहिये। आपत्तिकालमें मित्रकी परीक्षा होती है आदि। उक्त व्याख्याके सम्बन्धमें कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

भगवान् श्रीराम अपने पिताकी आज्ञाके अनुपालनमें जब वन जाना चाहते हैं, तो उनकी पत्नी सीता भी उनके साथ चलनेका हठ करती हैं। भगवान् राम उन्हें वनकी भीषण आपदाओंके बारेमें बताते हैं, परंतु एक अत्यन्त आदर्श पत्नीके रूपमें सीताजी निवेदन करती हैं कि जिस प्रकार बिना प्राणके शरीर तथा बिना जलके नदीकी दशा होती है, वही दशा पतिके बिना पत्नीकी भी होती है। उन्हें प्रतिक्षण चरण-कमलका दर्शन करते रहनेसे रास्तेमें किंचित् भी थकान नहीं होगी आदि। इससे अधिक आदर्शपूर्ण व्याख्या और क्या हो सकती है।

उदाहरणतया—

जिय बिन देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।
मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी।
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू।

भगवान् रामको भी सीतासे कितना प्रेम था—इसका उदाहरण है, जब उन्होंने आश्रममें जानकीको नहीं पाया तो वे इतने विकल हो गये कि उनका पत पशु-पक्षियों तथा लता-पेड़ोंसे पूछने लगे और नान प्रकारसे विलाप करने लगे—

आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना।
हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता।
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अति कामी।

भाई-भाईके सम्बन्धमें भी अत्यन्त उत्कृष्ट रोमांचक व्याख्या दी गयी है। लक्ष्मणको जब पता चला कि उनके बड़े भाई वन जा रहे हैं, तो वे व्याकुल होकर काँपते हुए दौड़कर आये और प्रेममें अश्रुपूरित नेत्रोंसे अधीर होकर भगवान् रामके पैरोंमें गिर पड़े। कुछ कहते नहीं बना, उनकी स्थिति ऐसी थी कि जैसे किसी मछलीको जलसे बाहर निकाल दिया हो। उन्होंने यही विनय की कि वह मन-क्रम-वचनसे उनका सेवक है और उसे भी वनके लिये साथ चलनेकी आज्ञा दे दी जाय। इससे सम्बन्धित व्याख्या इस प्रकार है—

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े।
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।
गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू।

कैकेयीद्वारा राजा दशरथसे दो वर माँगे गये, प्रथम भरतको राजतिलक, दूसरा रामको चौदह वर्षक

प्रस्थान कर गये। भरतने ननिहालसे लौटनेपर अपनी माताके कृत्यपर घोर पश्चात्ताप किया तथा पूज्य गुरु एवं समाजसहित भाई रामसे मिलने चित्रकूट पहुँचे। समस्त प्रकरणके लिये स्वयंको दोषी मानकर भाई रामसे अयोध्याका राज्य-पद ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। भगवान् रामने कहा कि माता और गुरुकी आज्ञा सर्वोपरि है। हे तात! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ तथा सूर्यकुलके रक्षक बनो। साधकके लिये आज्ञापालनरूपी साधना सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली कीर्तिमयी, सद्गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है। इसे विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवारको सुखी करो। भरतने भगवान् रामद्वारा दी गयी पादुका सादर शीशपर रखकर उन्हींको आधार मानकर शासन किया—

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

दो भाईके बीच प्रगाढ़ प्रेम एवं राज्य-सत्ताके त्यागका यह एक अनूठा एवं अनुकरणीय उदाहरण है।

रावण-वधके पश्चात् विभीषणद्वारा बार-बार भगवान् रामसे कुछ अवधिके लिये और रुकनेके आग्रहपर भगवान् रामने उनसे कहा कि भरतकी दशाकी याद आते ही उन्हें एक क्षण भी एक युगके समान लग रहा है। यदि वह अवधि बीतनेके पश्चात् अयोध्या पहुँचते हैं तो उनका भाई भरत जीवित नहीं मिलेगा।

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥
बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥

मेघनादके बाणसे जब लक्ष्मण मूर्छित पड़े हैं, उस दशामें भगवान् श्रीरामकी मनोदशा अत्यन्त ही दारुणदु:खमय हो जाती है। वे मूर्च्छा भंग होनेतक नाना प्रकारसे विलाप करते हैं।

लक्ष्मणको आदेश देती है कि यदि माता-पितातुल्य राम तथा सीता वन जाते हैं तो अवधमें तुम्हारा कोई कार्य नहीं है। तुम भी उनकी प्राणोंके समान सेवा करो। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई प्रसंग इस सम्बन्धमें आते हैं यथा—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।

श्रीदशरथजीने जिनको वृद्धावस्थामें पुत्ररत्न प्राप्त हुए और भगवान् रामपर विशेष स्नेह होते हुए भी पत्नीको दिये वचनकी रक्षामें अपने प्राणतक त्याग दिये, परंतु वचनको वापस नहीं लिया।

राजा जनक जो कि विदेह परम वैराग्यवान् तथा ज्ञानी कहे जाते थे, जब पुत्री सीताकी विदाईकी बेला आयी तो उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भर आया। सीताको देखकर उनका धैर्य टूट गया, हृदयसे लगा लिया, ज्ञानकी महान् मर्यादा मिट गयी। इस सम्बन्धमें व्याख्या इस प्रकार है—

बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए।
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी।
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की।
समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु न अवसर जाने।
बारहिं बार सुता उर लाईं। सजि सुंदर पालकीं मगाईं।

एक आदर्शके रूपमें भगवान् रामने पिताके द्वारा चौदह वर्षके लिये वनगमनकी आज्ञाको शिरोधार्य करके उसका अक्षरश: पालन किया तथा कहा कि—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।
धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें।

गुरुके बारेमें तो रामचरितमानसमें स्थान-स्थानपर अत्यन्त प्रमुखतासे उल्लेख किया गया है और गुरुको

अर्थात् उसका अत्यन्त सम्मान करते हैं, समस्त वैभव उनके वशमें हो जाते हैं।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

यदि गुरु भयके कारण प्रिय बोलने लगे, तो धर्मका शीघ्र ही नाश हो जाता है।

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

क्षेपक कथाओंमें भाभी तथा देवरके पवित्र सम्बन्धकी कितनी उत्कृष्ट व्यवस्था है, इसके उदाहरणके लिये भाभीके कानके कुण्डलोंको जब लक्ष्मणसे पहचाननेके लिये कहा गया तो लक्ष्मणने कहा कि—

मैंने तो चरण निहारे हैं, देखे माता के कान नहीं॥
मैं तो बिछुओं का सेवक हूँ, कुंडल की कुछ पहचान नहीं॥

श्रीरामचरितमानसमें यह व्याख्या की गयी है कि सेवकके घरपर जब स्वामीका आगमन हो, तो उसके लिये मंगलकारक तथा अमंगलका दमन करनेवाला होता है। इस ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर बड़े ही मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी प्रसंगोंमें यह दर्शाया गया है कि चाहे व्यक्ति कितना भी साधारण या दीन हो, भगवान् श्रीरामने उसके प्रति अपार प्रेम प्रकट किया है। उन्होंने केवल भक्तिके नातेको ही स्वीकार किया। कभी किसीके साथ किसी भी आधारपर पक्षपात नहीं किया। इस सम्बन्धमें सर्वप्रथम शबरीका प्रसंग आता है। भगवान् श्रीराम तथा श्रीलक्ष्मण जब शबरीके आश्रमपर जाते हैं तो शबरी उनके चरणोंको जलसे पखारती हैं तथा आसन देकर बैठाती हैं। भगवान् श्रीराम उनके द्वारा दिये गये कन्द-मूल-फलकी बार-बार प्रशंसा करके प्रेमसहित खाते हैं। इसी प्रसंगका उल्लेख—

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥

आगेका प्रसंग और भी मार्मिक है। शबरी कहती है—

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी।

भगवान् श्रीराम कहते हैं—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।

भरतजी भगवान् रामसे मिलने चित्रकूट जाते हैं, तो रास्तेमें उनकी भेंट निषादसे हो जाती है, उसे रामसखा जानकर भरत तुरन्त रथको त्याग देते हैं और अत्यन्त अनुराग तथा उमंगके सहित उससे मिलने चल पड़ते हैं। प्रेमसे उसे गले लगाते हैं, जैसे लक्ष्मणसे ही भेंट कर रहे हों। प्रसंग इस प्रकार है—

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ॥

देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू।

केवटने पहले परीक्षणके तौरपर अपने लकड़ीके कठौतेमें भगवान् श्रीरामके चरण धोये। फिर नावपर चढ़ाया कि कहीं उसकी नाव ही स्त्री न बन जाय। भगवान् राम उसकी परीक्षाके लिये तैयार हो गये। एक बार जिन भगवान् रामके नामका स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागरके पार उतर जाते हैं, उन्हीं कृपालु श्रीरामने केवटका निहोरा किया। केवटका यह प्रसंग तो भक्ति एवं प्रेमकी पराकाष्ठा है।

भारतीय समाज रामचरितमानसमें वर्णित उपर्युक्त पारस्परिक सम्बन्धोंको अपना आधार मानता चला आ रहा है। वास्तवमें यह ग्रन्थ अतीतमें समाजका पथ-प्रदर्शक था, वर्तमानमें अत्यन्त ही प्रेरणादायक एवं अनुकरणीय है और भविष्यमें भी यह अनुकरणीय रहेगा।

जगदम्बा सतीजीकी मोह-लीला

(डॉ० श्रीरमेशमंगलजी वाजपेयी)

जगदम्बा सतीजीका प्राकट्य सप्रयोजन है। इस सन्दर्भमें शिवमहापुराण (रुद्रसंहिता, सृष्टिखण्ड, अध्याय १६)-के अन्तर्गत कहा गया है—'पूर्वकालमें सर्वव्यापी शम्भुने जिन्हें तपस्याके लिये प्रकट किया था तथा रुद्रदेवके रूपमें त्रिशूलके अग्रभागपर रखकर जिनकी सदा रक्षा की है, वे ही सती देवी 'लोकहित' का कार्य सम्पादित करनेके लिये दक्षसे प्रकट हुई थीं। उन्होंने भक्तोंके उद्धारके लिये अनेक लीलाएँ कीं। इस प्रकार देवी शिवा ही सती होकर भगवान् शंकरसे ब्याही गयीं। माता सतीकी मोह-लीला परम अद्भुत है। जो सत्य प्रतीत होते हुए भी उनकी भ्रम-लीलाका एक रूप है। रुद्रसंहिताके सतीखण्डके अध्याय १४ से २० में सतीजीकी उक्त मोहलीलाका विस्तारसे वर्णन है। जिसके अनुसार 'एक समयकी बात है, तीनों लोकोंमें विचरनेवाले लीलाविशारद भगवान् रुद्र सतीके साथ बैलपर आरूढ़ हो, इस भूतलपर भ्रमण कर रहे थे। घूमते-घूमते वे दण्डकारण्यमें आये।

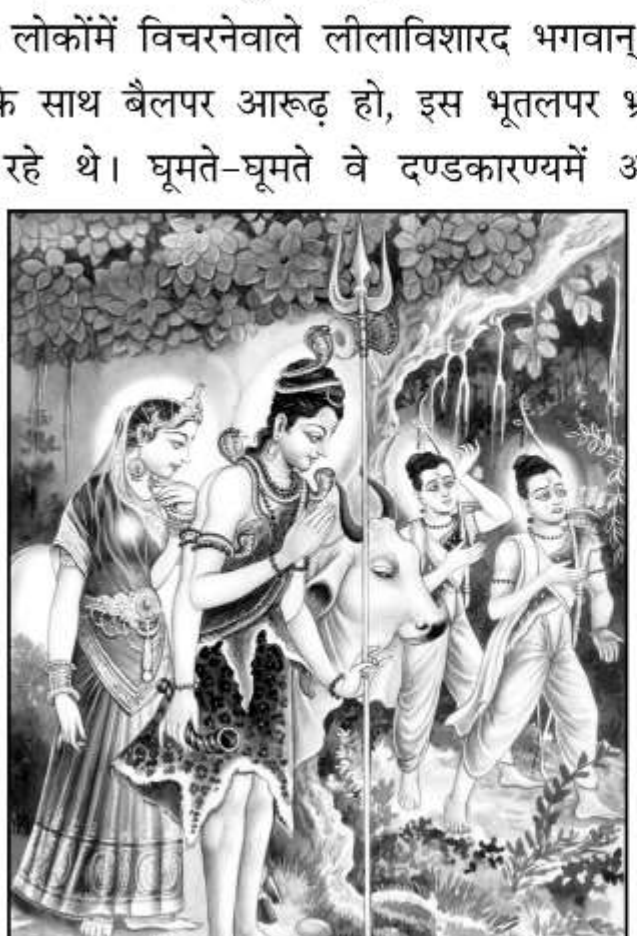

जो रावणद्वारा छलपूर्वक हरी गयी अपनी प्यारी पत्नी सीताकी खोज कर रहे थे। वे 'हा सीते!' ऐसे उच्च स्वरसे पुकारते, जहाँ-तहाँ देखते और बारंबार रोते थे। उस समय उदारचेता पूर्णकाम भगवान् शंकरने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया और जय-जयकार करके वे दूसरी ओर चल दिये। भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामके सामने अपनेको प्रकट नहीं किया। भगवान् शिवके ऐसा करनेपर सतीजीको बड़ा विस्मय हुआ।

सतीजीने भगवान् सदाशिवसे कहा—'देवदेव! सर्वेश परब्रह्म परमेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता आपकी ही सदा सेवा करते हैं। आप ही सबके द्वारा प्रणाम करनेयोग्य हैं। नाथ! ये दोनों पुरुष कौन हैं? इनकी आकृति विरह-व्यथासे व्याकुल दिखायी देती है। ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरते हुए क्लेशके भागी और दीन हो रहे हैं। प्रभो! सेव्य स्वामी अपने सेवकको प्रणाम करे, यह उचित नहीं जान पड़ता। यह मेरा संशय है, जिसे हे नाथ! दूर करनेकी कृपा करें।' सतीसे ऐसा सुनकर लीला-विशारद परमेश्वर शंकरने हँसकर उनसे कहा—

'हे देवि! सुनो, मैं प्रसन्नतापूर्वक यथार्थ बात कहता हूँ। इसमें छल नहीं है। वरदानके प्रभावसे ही मैंने इन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया है। प्रिये! ये दोनों भाई वीरोंद्वारा सम्मानित हैं। इनके नाम हैं—श्रीराम और लक्ष्मण। इनका प्राकट्य सूर्यवंशमें हुआ है। ये दोनों राजा दशरथके विद्वान् पुत्र हैं। इनमें जो गोरे रंगके छोटे बन्धु हैं, वे साक्षात् शेषके अंश हैं। उनका नाम लक्ष्मण है। इनके बड़े भैयाका नाम श्रीराम है। इनके रूपमें भगवान् विष्णु ही अपने सम्पूर्ण अंशसे प्रकट हुए हैं। उपद्रव इनसे दूर ही रहते हैं। ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हमलोगोंके कल्याणके लिये इस

हम सभी इन्हें प्रणाम करते हैं।'

इतना सहज, सरल और स्पष्ट प्रबोधन, फिर भी सतीका संशय? सती सब कुछ समझते हुए भी संशय करती हैं। उनका यह कृत्रिम संशय अकारण नहीं है। बल्कि इसमें भगवान् सदाशिवकी सम्मति भी प्रतीत होती है; क्योंकि वे वेदपति शम्भु प्रथम प्रवक्ता प्रणव हैं। ब्रह्माजी कहते हैं—'महादेवी सती तथा भगवान् सदाशिव शक्ति और शक्तिमान् हैं। वे चित्स्वरूप हैं। फिर भी उनमें लीला-विषयक रुचि होनेके कारण वह सब कुछ संघटित हो सकता है। सती और शिव यद्यपि ईश्वर हैं, तो भी लौकिक रीतिका अनुसरण करके वे जो-जो लीलाएँ करते हैं, वे सम्भव हैं।' इस आलोकमें सतीजीका कृत्रिम-संशय, उनकी लौकिक मोह-लीलाके रूपमें फलित हुआ। इस लीलाके सम्प्रेरक सदाशिव हैं। एतत् परस्पर सहमतिसे प्रजेश दक्षके अहंकारोन्मूलनके घटनासूत्र सतीकी संशयलीलासे प्रारम्भ होते हैं। सती दक्षसे उद्भूत थीं। वे लोकहितका कार्य-सम्पादन करने हेतु ही प्रकट हुई थीं। उस समय प्रजापति दक्षका अभिमान, लोक-संग्रहको आहत करते हुए शैव-धर्मको अपमानित करनेहेतु उद्यत हुआ। दक्षेशको दण्डित करनेमें सतीकी उपस्थिति मुख्य बाधा थी। अतः सतीने शिवको निर्दोष रखने एवं लोकहितार्थ संशय-लीला करनेका निश्चय किया। उन्होंने प्रभु श्रीरामकी परीक्षाका सदोष-विधान (सीताका वेष बनाकर) किया। फलतः शिवजीने सतीका मानसिक त्याग किया और इस क्रममें आगे चलकर श्रीसतीजीने पिता दक्षकी यज्ञभूमिमें अपनी देहको योगाग्निमें हवन कर दिया। इस प्रसंगसे जोड़ती मानसकी सम्बन्धित पंक्तियाँ हैं—

देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक।
बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयँ तब आवा।

× × ×

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी।
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही।
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू।

(रा०च०मा० १।६०।६-७, ६४।५—७)

कालान्तरमें दक्ष वीरभद्र और महाकालीद्वारा दण्डित हुए। दक्षके यज्ञका विध्वंस हुआ और शिव-भक्तिका सर्वोपरि प्रचार हुआ। रुद्रसंहिता, सतीखण्डके पचीसवें अध्यायमें कहा गया है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ सदा खलु सतीशिवौ।
तयोर्वियोगोऽसम्भाव्यः सम्भवेदिच्छया तयोः॥

अर्थात् सती और शिव वाणी तथा अर्थकी भाँति एक-दूसरेसे नित्य संयुक्त हैं। उन दोनोंमें वियोग होना असम्भव है। उनकी इच्छासे ही उनमें लीला-वियोग हो सकता है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त सती-शिवका लीला-वियोग, उन्हींकी इच्छासे हुआ, सतीका संशय, उनकी सम्बन्धित लीलाकी पृष्ठभूमि है।

अन्तर्दृष्टि

(पं० श्रीत्रिलोकीनाथजी उपाध्याय)

अन्तर्दृष्टि एक व्यक्तिके व्यक्तित्वका दर्पण होता है। हम किसी वस्तु या व्यक्तिको वैसा नहीं देखते जैसा वह होता है, हम वैसा देखते हैं, जैसा हम सोचते हैं। भेद दृष्टिमें नहीं दृष्टिकोणमें है। किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थितिमें गुण-दोष, सुख-दुःख हम अपनी मनःस्थितिके अनुसार देखते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके पास दो प्रकारकी स्वरूपको दिखाती है और दूसरी अन्तर्दृष्टि जो देखे हुए वस्तु, व्यक्ति या स्थितिमें भेद बताती है; सही-गलत, उचित-अनुचित, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, अनुकूल-प्रतिकूलका ज्ञान कराती है।

चार लोगोंने एक स्त्रीको देखा, उनमेंसे एकके मनमें वात्सल्यकी भावना आयी, दूसरेके मनमें पवित्रताकी

चौथेके मनमें मातृत्वकी भावना उत्पन्न हुई। अब सबकी दृष्टिने तो एक स्त्रीको ही देखा, किंतु सबकी अन्तर्दृष्टिका दृष्टिकोण भिन्न है। उनमेंसे पिताने वात्सल्यके भावसे, भाईने पवित्रताके भावसे, पतिने सौन्दर्य एवं कामके भावसे तथा पुत्रने मातृत्वके भावसे देखा। इसी प्रकार एक ही परिस्थितिको अलग-अलग लोग अपनी-अपनी मन:स्थितिके अनुसार अलग-अलग ढंगसे देखते हैं। अपनी मन:स्थितिके कारण कई लोग अनुकूल परिस्थितिमें भी प्रतिकूलताकी अनुभूति करते हैं और कई लोग प्रतिकूल परिस्थितिको भी अनुकूल बना लेते हैं।

एक बारकी बात है, एक महात्मा अपने कुछ शिष्योंके साथ अपने आश्रममें रहते थे। एक दिन एक सेठने सन्तोंका आश्रम देखकर आश्रमके लिये एक गाय दान की। शिष्योंने महात्मासे कहा, 'गुरुदेव! एक सेठने हमारे आश्रमके लिये एक गाय दान की है।' गुरुजी मुसकराये और कहा—'अच्छा हुआ, सबको दूध पीनेको मिलेगा।' कुछ दिन बाद उस सेठको लोगोंने भड़का दिया कि यह सन्तोंका आश्रम नहीं है, यह तो पाखण्डियोंका अड्डा है, अत: वह सेठ अपनी गाय वापस ले गया। शिष्योंने पुन: महात्मासे कहा—'गुरुदेव! वह सेठ तो अपनी गाय वापस ले गया।' गुरुजीने मुसकराते हुए कहा—'ये तो बहुत अच्छा हुआ, गोबर फेंकनेके झंझटसे मुक्ति मिली।'

जब परिस्थिति बदले तो अपनी मन:स्थिति बदल लो। फिर दु:ख भी सुखमें बदल जायगा। सारा खेल तो दृष्टिकोणका है, प्रसन्नताके लिये स्थिति नहीं मनोवृत्ति सकारात्मक होनी चाहिये। एक बार एक सन्त अपने दो शिष्योंके साथ चातुर्मासका व्रत लिये तीर्थाटन करते हुए चार माह पश्चात् अपने आश्रममें आये तो देखा कि उनकी कुटियाका आधा हिस्सा आँधीमें उड़ गया था। यह देख शिष्योंको बड़ा क्रोध आया और बोले—'हे भगवन्! ये तेरा कैसा न्याय है? हम तुम्हारी इतनी पूजा-आराधना करते हैं, फिर भी तूने हमारी आधी कुटिया उजाड़ दी और वहीं पापियोंके महल जैसे-के-तैसे खड़े हैं।' किंतु गुरुजीके नेत्र सजल थे। वे आसमानकी तरफ देखकर ईश्वरका धन्यवाद कर रहे थे कि हे नाथ! आप कितने दयालु हैं, इन आँधियोंका क्या भरोसा? इन्होंने तो पूरा आश्रम ही उजाड़ दिया होता, किंतु आपकी कृपा-करुणाने हमारी आधी कुटिया बचा ली। हम गरीबोंका आप कितना ध्यान रखते हैं, आपकी इस दयाके लिये आपको कोटि-कोटि धन्यवाद! शिष्योंके मनमें रोष था, अमर्ष था, हृदयमें जलन थी, वे आहत होकर दुखी थे, वहीं गुरुजीके मनमें परमात्माके प्रति कृतज्ञता थी, वे पुलकित और आनन्दित होकर भाव-विभोर हो रहे थे। रात्रिमें शिष्योंको नींद नहीं आयी; क्योंकि वे क्रोध और दु:खसे भरे थे, वहीं गुरुजी आनन्दके साथ सुखसे सो रहे थे। प्रात:काल पुन: गुरुजीने उठकर परमात्माको धन्यवाद दिया कि हे दयानिधान! आज तेरी अनुकम्पासे खुले आसमानमें सोनेको मिला। चन्द्रमा और सितारोंसे भरे अम्बरका दर्शन कितना सुखद होता है, इसकी अनुभूति आज हुई है।

जब शिष्योंने देखा तो बोले—'गुरुदेव! यह क्या पागलपन है? जिन्होंने हमारी कुटिया उजाड़ दी। आप उन्हें ही धन्यवाद कर रहे हैं?' गुरुजीने कहा, 'पुत्रो यह पागलपन नहीं है। जिस बातसे दु:ख बढ़े, वह जीवन-दिशा गलत है और जिस बातसे आनन्द बढ़ता हो, वह जीवन-दिशा सही है। मैंने परमात्माका धन्यवाद किया। मेरा सुख बढ़ा, तुमने क्रोध किया तुम्हारा दु:ख बढ़ा। तुमलोग रातभर क्रोध और हताशाके कारण बेचैन रहे, मैं सुख और आनन्दके साथ सोया। मैं आनन्दित हूँ, शान्त हूँ। तुम क्रोधित हो, अशान्त हो; तुम्हीं बताओ कौन-सी जीवन-दिशा सही है?'

सत्य ही है, हमारी नकारात्मक अन्तर्दृष्टि जीवनको दु:ख और निराशासे भर देती है, वहीं सकारात्मक दृष्टिकोणवाले व्यक्तिका जीवन सुख और आनन्दसे भर होता है।

श्रीमद्भगवद्गीताकी विलक्षणता एवं सहजता

(श्रीसुरेशजी शर्मा)

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीता सुगीता करनेयोग्य है। अर्थात् श्रीगीताजीको भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरणमें धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं पद्मनाभ भगवान् श्रीविष्णुके मुखारविन्दसे निकली हुई है; फिर अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है?

श्रीमद्भगवद्गीता बाइबलके बाद ऐसा धर्मग्रन्थ है, जिसका विश्वकी अनेक देशी एवं विदेशी भाषाओंमें अनुवाद छपा है। श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसकी भाषा इतनी सरल है कि साधारण ज्ञानवाला व्यक्ति भी इसे आसानीसे समझ सकता है एवं अर्थ इतना गूढ़ है कि बड़े-से-बड़ा विद्वान् पूरे जीवनपर्यन्त इसका अध्ययन करे तो भी इससे पार नहीं पा सकता है। हर बार कोई नयी बात निकल ही आती है। हालाँकि भगवद्गीता देश, काल, जाति, लिंग एवं सम्प्रदायसे परे है, किंतु यह मानवमात्रका ग्रन्थ है, यही इसकी विलक्षणता है। अगर हम इसका अध्ययन करें तो इसकी चार विलक्षणताएँ हैं।

साधनाका भौतिक आधार ब्रह्मचर्य एवं उपवास है। सभी धर्म इसपर जोर देते हैं। उपवासमें चन्द्रायणव्रत, फल, जल, वायु इत्यादिके सेवनपर जोर दिया जाता है, किंतु गीताके अध्याय ६ श्लोक १६ के अनुसार 'यह योग न तो बहुत खानेवालेको, न बिलकुल न खानेवालेको, न बहुत शयन करनेके स्वभाववालेको और न सदा जागनेवालेको ही सिद्ध होता है।'

यही बात तपके सम्बन्धमें है। अन्य विधियोंमें तपका अर्थ पंचाग्नि-सेवन, वर्षामें भीगना, सर्दीमें जलमें खड़ा रहना, वर्षोंतक खड़े रहना या एक हाथ उठाये रखना इत्यादि आते हैं, पर गीताके अध्याय १७ के अनुसार 'देवता, ब्राह्मण, गुरुका पूजन; पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यही शरीरसम्बन्धी तप है। (श्लोक १४) उद्वेग न करनेवाला प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण, वेदशास्त्रका पाठ, परमेश्वरके नामका जप वाणी-सम्बन्धी तप है। (श्लोक १५) मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन, मनका निग्रह मनसम्बन्धी तप है। (श्लोक १६) श्लोक ६ के अनुसार 'कठिन व्रत, उपवास एवं तप शरीररूपमें स्थित भूतसमुदाय एवं परमात्माको कृश करनेवाले हैं।' अतः गीता इनका निषेध करती है।

भगवद्गीताके अध्याय ९ श्लोक ३२ के अनुसार भगवान् कहते हैं—'हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा चाण्डालादि जो कोई भी हो, वे भी मेरे शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।' यह आश्वासन ही गीताकी विलक्षणता है। इसी प्रकार रामचरितमानस एवं हनुमानचालीसाका पाठ कोई भी स्त्री-पुरुष कर सकता है।

गीतामें एक और विलक्षणता है। गीताके १८वें अध्यायके अनुसार 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके, निष्काम कर्मद्वारा परम सिद्धिको प्राप्त करते हैं।' अर्थात् उनका स्वाभाविक कर्म ही पूजा है। यह विधि एवं ईश्वर-प्राप्तिका मार्ग किसी अन्य धर्म एवं शास्त्रमें नहीं मिलेगा।

गीताके अतिरिक्त दूसरे धर्मशास्त्रों, धर्माचार्यों, सम्प्रदायोंमें ब्रह्मचर्यका महत्त्व स्वीकार करते हुए स्त्रीको नरकका द्वार एवं हेय बताया गया है, किंतु गीता ही एकमात्र ऐसा शास्त्र है, जहाँ आसक्तिका निषेध किया गया है। अध्याय २ श्लोक १८ के अनुसार 'सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको आसक्ति एवं फलोंका त्याग करके अवश्य करना चाहिये।' अध्याय ३ श्लोक ६ के अनुसार 'जो मूढ़ बुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियोंको दृढ़तापूर्वक ऊपरसे रोककर मनसे उन इन्द्रियोंके विषयका चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी है।' आज सम्पूर्ण विश्वमें यही मिथ्याचार फैल रहा है। इसीलिये अनाचार बढ़ता जा रहा है। भगवान्ने गीता पढ़नेका अधिकार केवल उसे दिया है, जिसमें भक्ति, तप, श्रद्धा एवं प्रेम हो, अन्यको नहीं।

श्रीरामका रूप एवं शील

(प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत)

जिस रूपको देखनेपर प्राणियोंको यह प्रतीत हो कि अब देखनेके लिये कुछ भी शेष नहीं है, वही पूर्ण सौन्दर्य है। संसार और श्रीरामके सौन्दर्यमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि संसारमें सौन्दर्यको देखकर उपमा दी जाती है, वह उपमा श्रेष्ठ होती है तथा उपमेय कनिष्ठ होता है। किंतु भगवान्‌के सम्बन्धमें बात उलटी है, यहाँ उपमा छोटी पड़ जाती है और उपमेय हो जाता है बड़ा। प्रभु श्रीरामके श्रीविग्रहके लिये गोस्वामीजीने एक साथ तीन उपमाएँ दीं। पहले कहा कि प्रभुका रूप नील-सरोरुहके सदृश है, फिर कहा कि यह नीलमणिके सदृश है और जब सन्तोष न हुआ तो वे पुनः बोल उठे कि यह नील नीरधरके सदृश है।

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

(रा०च०मा० १।१४६)

अर्थात् भगवान्‌के नीले कमल, नीलमणि और नीले (जलयुक्त) मेघके समान (कोमल, प्रकाशमय और सरस) श्याम वर्ण (चिन्मय) शरीरकी शोभा देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं।

'रंगसे राम सुन्दर लगते हैं' इसके स्थानपर भक्त कहता है कि राम इतने सुन्दर हैं कि जिस रंगको स्वीकार कर लें, वही जगमगा उठे। रामके रूपने श्यामताको भी सुन्दर बना दिया। रामकी श्यामता एक रंगमात्र ही नहीं, वह चैतन्यकी दिव्य और अलौकिक आभा है, जो उनके जीवनके हर क्षणमें उन्हें अलौकिक करती है, आश्वासन देती है, आह्लादका आस्वादन और वितरण कराती है। रामका अनिर्वचनीय रूप (सौन्दर्य) पार्थिव जगत्‌के ऊपर उठकर विराट्‌से एकाकार कर देता है। रामके स्वरूपको गोस्वामीजीने उस सीमातक चित्रित किया है, जहाँ वह मनुष्योंको ही नहीं पशु-पक्षी और रूप-माधुर्यके द्वारा सौन्दर्यकी सारी मान्यताओंकी सीमा पार कर चुके हैं। सुन्दरताके सम्बन्धमें देश-काल आदिकी भिन्नतासे मान्यताओंमें अन्तर पाया जाता है, पर रामके सौन्दर्य-वर्णनमें गोस्वामीजी मानव-जातिसे आगे बढ़कर पशु-पक्षियोंमें भी उस सुन्दरताको प्रतिष्ठापित करते हैं। उनकी इस प्रकारकी आस्थाके पीछे रामका ईश्वरत्व है। ईश्वर देश, काल, व्यक्तिकी सीमाओंसे परिच्छिन्न नहीं है। अतः उसके प्रति सबका प्रेम और आकर्षण स्वाभाविक है।

शरीरधारी तीन ही प्रकारके होते हैं—जलचर, थलचर और नभचर। मानसमें इन सबके उदाहरण मिलते हैं—

थलचर—

कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी।

(रा०च०मा० १।२२१।१)

जनकपुरमें युवती स्त्रियाँ घरके झरोखोंसे प्रेमसहित श्रीरामचन्द्रजीके रूपको देखकर परस्पर कह रही हैं—हे सखी! इनपर करोड़ों कामदेवोंको निछावर कर देना चाहिये। ऐसा कौन शरीरधारी होगा, जो इस रूपको देखकर मोहित न हो जाय।

महाराजा जनकने श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर यहाँतक कह दिया कि वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर जिसका गान किया है, कहीं वह ब्रह्म तो युगल रूप धरकर नहीं आया है। मेरा मन जो स्वभावसे ही वैराग्यरूप है, इन्हें देखकर इस तरह मुग्ध हो रहा है, जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर। इनको देखकर अत्यन्त प्रेमके वश होकर मेरे मनने बरबस ब्रह्मसुखको त्याग दिया है।

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा।
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा।
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा।

खर-दूषणने जब राम-लक्ष्मणको देखा तो उनकी सौन्दर्य-माधुर्य-निधिसे चकित होकर वे बोले कि जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमेंसे हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे भाइयो! सुनो, हमने जन्मभरमें ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥

(रा०च०मा० ३। १९। ३-४)

साँपिनी और बीछी जब रास्तेमें जाते हुए प्रभु रामको देखती हैं, तो अपने भयानक विष और तीव्र क्रोधको त्याग देती हैं।

जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥

(रा०च०मा० २। २६२। ८)

जलचर—सेतुबन्धके अवसरपर कृपालु श्रीरघुनाथजी तटपर चढ़कर समुद्रका विस्तार देखने लगे। प्रभुके दर्शनके लिये सब जलचरोंके समूह प्रकट हो ऊपर निकल आये। वे सब (वैर-विरोध भूलकर) प्रभुके दर्शन कर रहे हैं, हटानेपर भी नहीं हटते। सबके मन हर्षित हैं, सब सुखी हो गये।

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥

(रा०च०मा० ६। ४। ४, ७)

नभचर—पक्षी और पशु भी वनमें प्रभुको देखकर प्रेमानन्दमें मग्न हो जाते हैं। प्रभुने उनके भी चित्त चुरा लिये हैं।

खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं॥

(रा०च०मा० २। १२३। ८)

शील—सौन्दर्य-शीलका स्वर्ण-सुगन्ध-जैसा दुर्लभ योग केवल राममें ही पाया जाता है। शील है जीवन-वाटिकाका सबसे रसीला और दुर्लभ फल, धर्मका सार-सर्वस्व, व्यवहारका बेजोड़ वरदान, वाणीका अनमोल दृष्टिमें शील सत्यकी अपेक्षा भी श्रेष्ठतर है। शीलवान् कई रूपोंमें हमारे सामने आते हैं—सहनशील, धर्मशील, दानशील, दमशील, अध्ययनशील आदि। शील है स्वभावकी सहजता। सद्गुण जिसके स्वभावका अंग बन चुका है, वह शीलवान् हो गया। शीलवान् कभी गर्व तो कर ही नहीं सकता; क्योंकि गर्व सर्वथा प्रयत्न-जन्य विशिष्टतापर ही होता है। अतएव शील गुणकी अपूर्णताको दूर करता है। यदि शील शब्दका स्वतन्त्र अर्थ लिया जाय तो वह स्वभावकी सहज मृदुता होगा। इसलिये ही शीलको सबसे उत्कृष्ट धर्म बताया गया है। जिन गुणोंके साथ शील जुड़ जाता है, उन्हें स्वाभाविक और सम्पूर्ण बना देता है। जबतक धर्म क्रियामें है, तबतक सबसे नीचे है। जब धर्म बुद्धिमें प्रवेश करे, तो उसका उत्थान हुआ और जब धर्म स्वभावमें आ गया, तो धर्म अपनी पूर्णतापर पहुँच गया। ये तीन स्तर हैं। धर्म क्रियामें, धर्म विचारमें, धर्म स्वभावमें। अतएव स्वभावगत धर्मका सर्वोत्कृष्ट रूप शीलमें ही है। यदि शील स्वभावगत न होकर क्रियागत होगा, तो वह दम्भ कहलायेगा। जीवनमें जब स्वभावगत परिवर्तन आ जायगा, तो व्यक्तिको धर्मका पालन करना नहीं पड़ेगा, वरन् वह होने लगेगा।

श्रीराम शीलकी अनुपम निधि हैं। बाल्यावस्थामें वे भरतजीकी खेलमें विजय होनेपर इतने अधिक प्रसन्न हो जाते हैं कि उस उल्लासमें दानकी झड़ी लगा देते हैं। वे मानते हैं कि विजयकी प्रसन्नता संग्रहकी वृत्ति है, पराजयका सुख दानवृत्तिकी प्रसन्नता है। पराजयमें आनन्दकी अनुभूति श्रीराघवेन्द्रकी विजय ही है। इसे हम उनके शीलकी विजय कहेंगे। भरतजीने चित्रकूटमें एक सभामें कहा भी है—

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही।

(रा०च०मा० २। २६०। ८)

भगवान् श्रीराम परशुरामके ब्राह्मणत्वका समादर

हीन नम्रतासे चकित हो जाते हैं। उन्हें यह प्रतीत होता है कि यह पूर्ण पुरुषका अवतरण है। परशुराम पराजित हुए और रामभद्र विजयी। पर इस पराजय और विजयका स्वरूप सर्वथा भिन्न है। यहाँ विजेता नम्रतासे सिर झुकाये खड़ा है और पराजित लज्जा या ग्लानिके साथ आनन्दमें डूबा हुआ है। यही प्रभुके शीलका सच्चा चित्र है। विदा होते समय परशुरामजी प्रभुकी स्तुति करते हैं और उन्हें शील-सागरकी उपाधि देते हैं।

बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर॥

(रा०च०मा० १। २८५। ३)

अर्थात् हे विनय, शील, कृपा आदि गुणोंके समुद्र और वचनोंकी रचनामें अत्यन्त चतुर! आपकी जय हो।

प्रभुके शीलका एक उदाहरण और देखिये। महाराजा दशरथ उन्हें युवराज पद देनेकी घोषणा करते हैं। दूसरेकी वस्तु छीननेकी चेष्टा करना अधर्म है, अपनी जो धर्मानुकूल प्राप्त वस्तु है, उसपर अधिकार कर लेना धर्म है, पर अधिकारसे प्राप्त वस्तुको दूसरेको दे देना शील है। शीलका आशय वस्तुके अधिकारकी स्वीकृतिमात्र नहीं बल्कि प्राप्त वस्तुका भी त्याग है। शीलका वास्तविक अभिप्राय है—जहाँ हम धर्मका पालन तो करते हैं, पर उसके द्वारा प्राप्त फल नहीं लेते। वह किसी दूसरेको देना चाहते हैं। यह शीलका उत्कृष्टतम रूप है। भगवान् रामका शील उनके मित्रोंके मनपर ऐसा प्रभाव डालता है कि वे ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं—

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥

(रा०च०मा० २। २४। ५-६)

अयोध्याका प्रत्येक नागरिक भगवान्‌से यही माँगता है कि रामके राज्यमें ही हम मर जायँ—

अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ॥

(रा०च०मा० २। २७३)

प्रभु कहनेके लिये राजा हैं, पर संसारके प्रत्येक प्राणीके हैं सेवक। यही प्रभका विलक्षण शील है—

जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई।

(रा०च०मा० ३। ६। ८)

जहाँ शील है, वहाँ सब कुछ आ जाता है और जहाँ शील नहीं है, वहाँसे सब कुछ चला जाता है। इस सम्बन्धमें महाभारतमें एक कथा है। एक बार प्रह्लाद जब राजा हुए तब इन्द्रका धन-ऐश्वर्य उन्होंने छीन लिया। इन्द्र गरीब हो गये। तब वे गुरुजीके पास गये। गुरुजीने कहा—तुम अब प्रह्लादके पास जाओ और सीख आओ कि ऐश्वर्य और सम्पत्ति कैसे मिलती है? इन्द्र प्रह्लादके पास गये, उनकी सेवा की। प्रह्लाद बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि तुम्हारी जो इच्छा हो, सो हमसे माँग लो। इन्द्र बोले—अच्छा, हमें धन दो, प्रह्लाद बोले कि ले जाओ, इन्द्रने कहा—ऐश्वर्य दो, प्रह्लादने कहा—ले जाओ, धर्म दो, प्रह्लादने कहा—कि ले जाओ। इन्द्रने जो-जो माँगा, प्रह्लादने सो-सो दे दिया।

अब लक्ष्मीजी निकलीं और कहा कि मैं जा रही हूँ, प्रह्लादने कहा—'जाओ, देवी।' इसी प्रकार क्रमशः सत्य और धर्म भी निकले, प्रह्लादने उन्हें भी कहा कि जाओ, इसी बीचमें उनके शरीरमेंसे शील निकला, तब प्रह्लाद बोले—ठहरो! सब कुछ मैं इन्द्रको नहीं दे सकता—शील मेरा है। शील लौटकर आ गया और प्रह्लादके शरीरमें बस गया। तब धर्म भी लौट आया, सत्य भी लौट आया, लक्ष्मी भी लौट आयीं; क्योंकि जो शीलवान् होता है, उसीके अन्दर सारे सद्‌गुण होते हैं। इन्द्रने पूछा कि शील ऐसी क्या चीज है कि सत्य, धर्म सब-का-सब लौट आया। इन्द्रके गुरु बोले—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहः सदा दानं शीलं मे तत् प्रशस्यते॥

अर्थात् मन, कर्म, वचनके साथ किसीसे द्रोह मत करो, किसीका बुरा मत चाहो, किसीका अनिष्ट मत चाहो, सबके ऊपर अनुग्रह और सबको कुछ-न-कुछ दो। यही शील है और यही जीवनका सबसे प्रशस्त रूप है।

श्रीराधामाधव-चिन्तन

(डॉ० श्रीराजेशजी शर्मा)

राधामाधव मात्र युगल सरकार राधाकृष्णके नामोंका पर्याय ही नहीं, अपितु जीवनकी सार्थकतासे जुड़ा ऐसा चिन्तन है, जिसे साधकोंने अपनी रहनि-सहनिका आधार बनाया। साधकोंके जगत्‌में यह नित नये रूपोंमें नयी व्याख्याओंके साथ उदित होता रहा है। इस बीजमन्त्रको साधकोंने अपने साधना-चिन्तनके आधारपर जिन-जिन रूपोंमें फलित किया, वह भारतके आध्यात्मिक जगत्‌की बहुमूल्य धरोहर है। इस धरोहरके पल्लवन, संरक्षण एवं विस्तारमें साधकोंकी पीढ़ियाँ गुजरी हैं। यही कारण है कि राधा-माधव-भावकी व्याप्ति न केवल भारतके आंचलिक परिदृश्यमें गहरेतक व्याप्त है, बल्कि भक्तिसे अभिप्रेत अन्तर्राष्ट्रीय पटलपर आज यह श्रद्धा और जिज्ञासाके केन्द्रमें है।

राधामाधवकी चिन्तन-यमुनामें अगर गोता लगाना है, तो हमें वृन्दावनके यमुनातटस्थ वंशीवटपर उपस्थिति देनी ही होगी। यह पवित्र स्थल आज भी युगल-सरकारके उस महारासका साक्षी है, जिसमें प्रवेशका अधिकार भौतिक दृष्टिसे खास एवं आम समझे जानेवाले किसी मनुष्य और देवको नहीं, बल्कि राधाकी अष्ट सखियोंमें उनकी अन्तरंगा ललिता और विशाखासे अनुमति प्राप्त सौभाग्यशाली ही इसमें प्रवेशके अधिकरी हैं। यह राधाकी अन्तरंगा सखी ललिताका प्रभाव ही था कि उसने देवाधिदेव महादेवको भी यह कहकर रोक लिया कि यहाँ प्रवेशकी अधिकारी केवल गोपिकाएँ ही हैं। श्रीकृष्णके मधुर वेणु-नादका स्वर सुनते ही वृन्दावनमें महारास-दर्शनका लाभ लेने आये कैलासपति महादेव भी भला ऐसा अवसर कहाँ गवाँनेवाले थे? उन्होंने तत्काल गोपीरूप धारण किया और पहुँच गये राधामाधवकी उस दिव्य रासस्थलीमें, जहाँ स्थान प्राप्त करनेके लिये साधक जन्मसे मृत्युपर्यन्त ही नहीं, अपितु जन्म-जन्मान्तर इस भावनासे साधनारत रहते हैं कि हमें कब वह अलौकिक क्षण मिलेगा? वृन्दावनकी भूमिपर नित्य विहार करनेवाले रासबिहारी युगलसरकारकी उपासना-रीति अनूठी है। जिसमें राधा और माधव दो न होकर एक ही हैं। मिलित स्वरूपकी इस रूप-माधुरीको साधकोंने अपने यहाँ उपासनाका अंग बनाया। इस भूमिपर साधनारत नित्य विहार-स्थलकी पावन रजका संस्पर्श पाये बिन सम्भव नहीं। निम्बार्काचार्य श्रीभट्टजीने इस विचारको आमजनके लिये लोकभाषामें साझा करते हुए कहा—

रे मन! वृन्दा विपिन विहार।
विपिनराज सीमा के बाहर, हरि हूँ कूँ न निहार॥

राधा-माधव, स्यामा-स्याम, नित्यविहारी युगल-सरकार रासबिहारी एवं श्रीजीके रूपमें राधा-कृष्णका एक प्राण-दो देहभाव, यहाँ साधकोंकी रहनि-सहनिसे प्रकट देखा जा सकता है। वृन्दावनसे प्रतिदिन व्रजयात्राके दैनिक क्रममें जब चतुर चिन्तामणि नागाजी महाराजकी जटाएँ कदमखण्डीके पास हींसकी सघन झाड़ियोंमें अटक गयीं और प्रयास करनेपर भी सुलझा न पाये तो उन्होंने भी हठ कर लिया—***'जानै उरझाई हैं, बोई सुरझायेगौ'*** समीपस्थ व्रजवासियोंने कहा भी कि महाराजजी हम कुछ सहयोग कर दें, पर चतुरानन नागा कहाँ माननेवाले थे? अन्न-जल त्यागकर दो दिन बस अपने प्रभुका स्मरण करते रहे। भगवान् भी भक्तकी पूरी परीक्षा लेते हैं। आखिरमें प्रभु पधारे, तो नागाजीने पहचाननेसे ही मना करते हुए कहा—मेरे आराध्य तो कभी अकेले चलते ही नहीं। वास्तवमें राधा और माधवका ऐसा चिन्तन और इन साधकोंकी रहनि-सहनि ही हमारे लिये आज भी हमें उस पथका राही बननेका मार्ग प्रशस्त करता है—

इक दिना हींस मांझ तिनकी सु लटा उरझाँनी।
हम सुरझाइ दैइ, व्रजवासिन देखि कहीं यह बानी॥
कहीं आप उरझाई जानें, सोई आप सुरझैंहै।

आजसे कोई ५०० साल पहले १६वीं सदीमें सन्त हरिराम व्यासजी महाराज भी इस पथके पथिक बननेको व्याकुल हो उठे। ओरछा रियासतके राजगुरुका वैभवशाली पद भी उन्हें व्यर्थ ही लगने लगा—

हरि कब हुई है, हम वनवासी।
कब मिलिहैं, वे सखी-सहेली हरिवंशी हरिदासी॥

वृन्दावनकी निकुंजोंमें विहार करनेवाले राधामाधवकी उपस्थितिका अनुभव इस विपिनमें आनेवाले साधकोंने यहाँकी लता-पताओं और इस नित्य विहार-स्थलीकी

यहाँकी पवित्र रजको *'स्याम बंदिनी विहार रज'* कहते हुए इसे मस्तकपर धारण करनेकी बात कही। १६वीं सदीके दौरान अपने शिष्य बीठलदासके व्रजभाषा गद्यमें लिखे हितजीके पत्रोंमें इसका उल्लेख मिलता है। वहीं हरिराम व्यासजीने तो युगल-सरकारकी चरण-प्रसादी इस रजको ही अपना जीवन-धन माना—

मोहिं बिंदावन रज सौं काज।
माला-मुद्रा स्याम बंदिनी तिलक हमारौ साज॥

यहाँ इस चिन्तनमें निमग्न रहनेवाले साधकोंके स्यामा-स्याम दो तन होनेपर भी एक ही हैं। युगलका यह मिलित स्वरूप जन्म और मृत्युके बन्धनसे परे है। न इनका बाल्यकाल है और न ही प्रौढ़ावस्था। वास्तवमें ऐसे नित्य किशोर स्यामा-स्याम ही वन-वृन्दावनके साधकोंके आराध्य हैं—

मेरे नित्य किसोर अजन्मा। बिहरत एक प्रान द्वै तन मां॥
बिलसत कुंज कुटी छिन-छिन मां। संतत बस बसत वन घन मां॥

राधा और माधवकी मिलित झाँकीको, साधकोंने स्व-चिन्तनसे नव दिशाएँ दीं। इस मन्थनसे नि:सृत नवनीतका आस्वाद ही इन महाभक्तोंका जीवन-धन था, जिसके स्वादको चखते हुए ये निरन्तर उसी भाव-भूमिपर बने रहना चाहते थे। भक्तिके प्रवाहसे उपजा अचरज ही है कि प्रचुरतासे विपुल साहित्य रचनेवाले इन महासाधकोंके पास इस रसास्वादनका अनुभव तो है, पर अभिव्यक्तिके लिये शब्द नहीं। तभी तो रासबिहारी राधा-माधवकी अलौकिक छटाका अनुभव करते हुए भी उसे अभिव्यक्त किये जानेकी मनोदशाके सन्दर्भमें राधावल्लभी साधक स्वामी दामोदरदासजी यह कहते दिखते हैं—

रास विलास अपार रूप कछु कहत बनै ना।
लोचन के नहिं जींभ, जींभ के नाँही नैना॥

राधामाधवके चिन्तनको समझनेकी एक दृष्टि हरिराम व्यासजीने भी दी है। राधामाधवकी सरस लीलाओंका गायन करनेका प्रथम सौभाग्य जयदेवको प्राप्त है। उन्हींसे प्राप्त मधुर रसको अन्य लोगोंने अपनी-अपनी तरहसे गाया—

श्रीजयदेव से रसिक न कोई, जिन लीला रस गायौ।
पतित पतत्रे मुख निसरति ही, राधा माधव कौ दरसन पायौ॥
वृंदावन कौ रसमय वैभव, जिनमें पहिलैं सबनि सुनायौ।
ता पाछै औरनु कछु भायौ, सो रस सबनि चखायौ॥
पद्मावती चरननि कौ चारन, जिहिं गोविंद रिझायौ।

भक्तिकी राजधानी वृन्दावनमें इस भावकी सहज अनुभूतिका साक्षात्कार गोस्वामी हित हरिवंश महाप्रभु, स्वामी श्रीहरिदास एवं सन्तप्रवर हरिराम व्यासजीने जिस रूपमें किया, उसका विस्तार उनकी वाणियोंसे उद्घाटित है। वृन्दावनकी सौभाग्यशाली लता-कुंजोंमें विहार करनेवाले युगलस्वरूपका परिदर्शन कराते हुए कहते हैं—

निकसि कुंज ठाड़े भये भुजा परस्पर अंश।
श्रीराधाबल्लभ मुख कमल निरखि नैन हरिवंश॥

स्वामी हरिदासजी भी स्यामा-स्याम रसभावके रसिक थे। स्वामीजीके समकालीन व्यासजी महाराजने कहा है—*'एसौ रसिक भयौ न ह्वै है, भुव मंडल आकास।* स्वामीजीकी विशिष्ट उपासनाका आधार नित्यविहारी स्यामा-स्यामका मिलित स्वरूप ही है। वह बादल और बिजली (घन-दामिनी)-के समान एक-दूसरेसे पृथक् न होनेवाले युगल सरकार हैं। वह सदा-सर्वदासे हैं और आगे भी रहेंगे। स्वामीजीने इसी भावसे स्वइष्टको लाड़ लड़ाया—

माई री, सहज जोरी प्रगट भई
रंग की गौर-स्याम घन दामिनी जैसे।
प्रथम हु हुती अबहु, आगे हू रहि है, न टरि हैं तैसे॥

स्वामीजी राधारानीकी अन्तरंगा, ललिता सखीके अवतार हैं। इनके द्वारा प्रदत्त उपासनाके मार्गका पथिक होनेके लिये साधककी पात्रता जरूरी है। भगवत् रसिकने कहा है—वृन्दावनी उपासनाका यह चिन्तन सिंहनीके उस दूधकी तरह है, जिसे सिंहका शावक ही पचा सकता है या ये स्वर्णपात्रमें संरक्षित रहता है। इस उपासनाके मार्गपर आनेके लिये भक्तिमार्गपर तपना जरूरी है—

"'ललिता सखी उपासना ज्यौं सिंहनी कौ छीर॥
ज्यौं सिंहनी को छीर रहै कुंदन के बासन।
कै बच्चा के पेट, और घट करै विनासन॥
'भगवत' नित्य विहार पर, परौ सब ही के परदा।
रहैं निरंतर पास रसिकवर सखी संप्रदा॥

हरिराम व्यासजी महाराज तो इस नित्य विहार रास-रसके परम प्रेमी थे। रासानुकरण देखते हुए युगल-सरकारके दिव्य चिन्तनका साक्षात्कार ही उनका भजन था। फलत: उनके इष्ट तो सदैव उनके समक्ष प्रत्यक्ष ही रहे हैं। इस भजनके प्रतिफलमें उनकी चाहना कुछ और नहीं, सिर्फ यही थी कि मैं इन्हीं लता-कुंजोंके मध्य किसी

किसोरी, तेरे चरननि की रज पाऊँ।
बैठि रहौं कुंजनि के कौनै, स्याम-राधिका गाऊँ॥
या रज सिव-सनकादिक ललचत, सो रज सीस चढ़ाऊँ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, बिमल-बिमल जस गाऊँ॥

रास बिहारी युगल-सरकारके नित्य चिन्तनके आगे व्यासजी महाराजके लिये भौतिक जगत्की बहुमूल्य निधियाँ भी व्यर्थ थीं। उन्होंने वृन्दावनी उपासनाके मार्गको अपनी रहनि-सहनिमें धारण किया, जिसके आगे सांसारिक पद-प्रतिष्ठा, मान-अपमान सभी दूरकी वस्तुएँ थीं। इनके जीवनका वह अलौकिक क्षण रसिक सभाको आज भी राधामाधवकी उपासनाके प्रति दृढ़ता और श्रद्धाका बीज वपन करानेमें समर्थ है, जिसका उल्लेख स्वयं भक्तमालकार नाभादासजी महाराजसहित कई अन्य साधकोंने किया है। एक समय जब व्यास जू महाराज रासलीलानुकरणके माध्यमसे युगल सरकारकी नित्य विहारलीलाके चिन्तनमें रत थे तो इधर यकायक श्रीजीके चरण-कमलोंसे नूपुर खुल गये। रसमें व्यतिक्रम हुआ तो व्यासजीकी समाधि भंग हुई। सन्त-समाज उपस्थित था। उपाय तलाशे जाने लगे कि नूपुरके लिये मजबूत डोरी ढूँढ़कर रासको पुनः सुचारु किया जा सके। लोग कुछ समझ पाते, इसीके मध्य व्यासजीने अपना जनेऊ खोलकर तत्काल रासेश्वरी राधाके नूपुर बाँध दिये—

न गुनौ तोरि नूपुर गह्यौ महत सभा मधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ भक्त इष्ट अति व्यास के॥

राधामाधवके सतत चिन्तनमें निमग्न रहनेवाले साधकोंके लिये इनकी रहनि-सहनिसे जुड़े प्रसंग राधामाधवके लीला-चिन्तनमें प्रवेशका मार्ग दिखाते हैं। जिसका भाव यही है कि जीवनको युगल सरकारके प्रति **'त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये'** भावके साथ उन्हींको समर्पित कर दो। व्यासजीके जीवनसे जुड़ा यह प्रसंग साधकोंके लिये अपनी ही तरहका एक उदाहरण है, जिसमें मर्यादाओंका अतिक्रमण नहीं, प्रभुके प्रति समर्पणका भाव निहित है। इस प्रसंगको महात्मा भगवन्तमुदितजीके साथ कई परवर्ती साधकोंने बहुविध रेखांकित किया है ताकि चिन्तनकी यह पवित्र यमुना अनवरत यूँ ही प्रवहमान बनी रहे।

युग-युगीन राधामाधवभावको वृन्दावनकी भूमिसे सदैव नयी ऊर्जा और चिन्तनकी नव दिशाएँ मिली हैं। महाप्रभु चैतन्यके पार्षदरूप गोस्वामीपादने विदग्धमाधव और ललितमाधवके माध्यमसे भक्ति-आन्दोलनके उस दौरमें जिन संस्कारोंकी धारा प्रवाहित की, उससे अभिप्रेत राधामाधव-संचेतनाकी एक भावभूमि गौड़ीय वैष्णवोंके संस्कारोंमें उत्तरोत्तर फलित दिखती है। जीवगोस्वामीजी-कृत माधव-महोत्सव वास्तवमें मात्र एक ग्रन्थ नहीं, बल्कि राधामाधव-चिन्तनका यह महामहोत्सव है, जो हमें इस उत्सवसे जुड़े प्रत्यक्ष भावकी भूमिपर ला खड़ा करनेमें समर्थ है। संस्कृतमें सुलभ इन भावोंके समय-समयपर हुए व्रजभाषा अनुवाद बताते हैं कि आम लोकमानस भी इस रस-यमुनामें गोता लगाकर राधामाधवमय होना चाहता था।

राधामाधवकी लीला-भूमि वृन्दावनका प्रभाव ही था कि दाक्षिणात्य तैलंग ब्राह्मण गदाधरभट्टने सुदूर दक्षिणके हनुमानपुर गाँवस्थित अपने आवासमें जब ***'सखी हौं स्याम रंग रँगी'''*** पद रचा और इधर वृन्दावनमें इस पदको जीवगोस्वामीजीने किसी सन्तसे गुनगुनाते सुना तो उन्होंने उसी सन्तके हाथ एक श्लोक रचकर प्रेषित किया जिसका भाव यही था कि जिसने राधिकाके चरण-कमल-रजकी आराधना नहीं की, और जो वृन्दावनमें युगल-सरकारके चिन्तनमें रत, रसिकोंका सत्संगी न हुआ, वह राधामाधव-भावके महासमुद्रमें गोता कैसे लगा सकता है? कहते हैं संस्कृतके एक श्लोकमें रचित उस पत्रको लेकर जब सन्तवृन्द अपनी व्रजयात्रा पूर्ण करके पुनः दक्षिण पहुँचे तो प्रातःकालमें गदाधरभट्टजी घरके बाहर एक कूपके समीप दातुन कर रहे थे। पत्रको पढ़ते ही गदाधर भावावेशमें घर न जाकर उसी कूपसे प्रभुकी नित्य विहार-स्थली वृन्दावनकी ओर चल दिये।

राधामाधवभावको संस्कारित एवं पल्लवित करनेमें गौड़ीय-परम्पराके इन साधकोंका महत्त्वपूर्ण योगदान है। गदाधरभट्टजीकी पीढ़ीमें वल्लभ रसिक उपासनाके इस भावको समझते थे। उन्होंने कहा वृन्दावनी भक्तिको प्राप्त करनेके लिये उन वाणियोंका अनुशीलन जरूरी है, जिसका कथन हमारे पूर्व साधक-आचार्योंने किया। उनकी वाणीसे उपजे युगलस्वरूपके दृश्य-चित्रका स्वयंके नेत्रोंसे साक्षात्कार करानेपर ही इस अनुभवको समझा जा सकता है—

बैननि के नैनान सौं दरस्यो युगल स्वरूप।
नैनन के बैनान सौं बरनौ रूप अनूप॥

वेदपुराणान्तर्गत पर्यावरण-संरक्षण-व्यवस्था

(डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी श्रीवास्तव, साहित्यवाचस्पति)

इधर कुछ वर्षोंसे पर्यावरण-प्रदूषणकी चर्चा नगरोंमें, बल्कि बड़े नगरोंमें अधिक व्याप्त है। जल, वायु और ध्वनि पर्यावरणके तीन प्रमुख आधारभूत अंग हैं, जिनके संरक्षण और विनियमित करनेके लिये पर्यावरण प्रदूषण-नियन्त्रणके कानून तथा कानूनके विधिवत् अनुपालन करानेहेतु केन्द्र एवं प्रादेशिक स्तरपर बोर्डद्वारा नियन्त्रण रखे जानेकी व्यवस्था की गयी है। यही नहीं, जिन कल-कारखानोंद्वारा पर्यावरण-संरक्षण-सम्बन्धी कानूनोंका उल्लंघन किया जाता है, उसके लिये दण्डका प्रावधान भी कानूनमें किया गया है।

भारतीय संस्कृतिमें पर्यावरण-संरक्षण एवं पर्यावरण-प्रदूषण-नियन्त्रणकी व्यवस्था वैदिक एवं पौराणिक कालसे चली आ रही है। यजुर्वेदमें जल, वनस्पति, औषधि आदिके संरक्षणकी कामना करते हुए वेदवाणी है कि—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ (यजुर्वेद ३६। १७)

अर्थात् द्युलोक, अन्तरिक्षलोक यानी पृथ्वीसे परे समस्त लोक और पृथ्वी जिसपर हम आवासित हैं, वह हमारे लिये सुख-शान्तिप्रद हो। जल, औषधियाँ और समस्त वनस्पतियाँ शान्तिप्रद हों, समस्त देवता, ब्रह्म और सब कुछ शान्तिप्रद हों। विश्वमें सर्वत्र व्याप्त शान्ति हमें प्राप्त हो।

यजुर्वेदमें ही पर्यावरणके कल्याणप्रद होनेके विषयमें उल्लिखित है कि

शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु। (यजुर्वेद ३६। १०)

अर्थात् वायु हमारे लिये सुखकर हो, जिससे दैहिक, दैविक, भौतिक तापोंसे रक्षा हो सके, सूर्य हमारे सभी कृषि, वनस्पति तथा औषधि आदि समयसे हमारी रक्षा एवं कल्याणके लिये प्राप्त होती रहें, यही नहीं मेघ हमारी कृषि, वनस्पति एवं औषधि आदिके लिये समयसे समुचित वर्षा एवं जल उपलब्ध कराते रहें।

ऋग्वेदसंहितामें कहा गया है—'**अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्**' अर्थात् जलमें अमृतका वास है, जो औषधिकी भाँति कल्याणप्रद है अर्थात् यजुर्वेदमें पृथ्वी, जलस्रोतों एवं वनस्पतियोंके सुखकर होनेकी परिकल्पनाके साथ ही अन्तरिक्ष एवं वायुमण्डलकी पवित्रताकी भी परिकल्पना करते हुए कहा गया है—

पृथ्वीं यच्छ पृथ्वीं दृꣳह पृथ्वीं मा हिꣳसीः

वायुमण्डलके साथ ही यजुर्वेदमें बादलोंके आवागमनको सर्वथा समयानुकूल, शुभ एवं मंगलकारी होनेकी परिकल्पना करते हुए कहा गया है—'**शं योरभि स्रवन्तु नः।**' (यजुर्वेद ३६। १२)

यह सर्वविदित है कि वास्तुसम्मत या पर्यावरण-संरक्षण और प्राणिमात्रके कल्याणार्थ छायादार या फलदार वृक्षारोपण एवं सरोवर-संरक्षण, वापी, कूप, ताल-तलैया, बाँध आदिका निर्माण, सरिताओंका संरक्षण, उनपर पुल बनवाना, सेतुबन्धन (जैसा रामेश्वरम्में है), जन-सामान्य एवं प्राणिमात्रके आवागमनहेतु मार्ग-निर्माण आदि सेवा-धर्मके कार्य हैं, जिनका अनुसरण किया जाना जनकल्याण एवं धर्मसम्मत कृत्य हैं, जिनसे पितृजनोंको परलोकमें पुण्यकी प्राप्ति होती है। वेदमें सुखप्रदायिनी तथा मधुमयी प्राकृतिक सृष्टिकी परिकल्पना करते हुए कहा गया है—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।

(यजुर्वेद १३। २७—२९)

भाव यह है कि जो सांस्कृतिक पृष्ठभूमिमें

लिये वायु तथा जल सर्वथा मधुमय अर्थात् सुखकर आनन्ददायी हों। सारी वनस्पतियाँ उनके लिये मंगलप्रदायिनी और मधुमयी हों। उनके लिये भोर उत्साहप्रद तथा रात्रि शान्ति एवं विश्रामदायिनी हो। इसके साथ ही सृष्टिकर्तासे मंगल कामना की गयी है कि समस्त जीवोंके लिये और हमारे लिये पृथ्वी अर्थात् वर्तमान सुखकर हो और इसी प्रकार परलोक भी स्वर्गिक सुखसे परिपूर्ण हो। नित्य सूर्य भगवान् हमपर कृपावृष्टि करें। धेनु हमारी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली, पवित्रता एवं समृद्धिका आधार बने।

जलकी शुद्धि बनाये रखनेका उपाय आवश्यक है। यही नहीं, यह भी कहा गया है कि '**सविता अपामीवां बाधते**' तथा '**सत्यं ततान सूर्यः**'।

अर्थात् सूर्य अपने तापसे हमारी रक्षा करता है, हमारे साथ समस्त कृषि, औषधि और जलसहित ऋतुचक्र है, जो सूर्यद्वारा ही नियन्त्रित होता है। सूर्य ही परमात्माकी वास्तविक सत्ताको दैदीप्यमान और प्रकाशित करता है। ऋग्वेदसंहितामें ही यह भी कहा गया है कि—'**ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति।**' तात्पर्य यह है कि प्रकृति और सृष्टिके नियमोंके परिज्ञान, पालन एवं अनुसरणसे हमारा कल्याण हो सकता है।

धर्मपरायण जन देवी-देवताओंमें अनन्य श्रद्धा तथा अनुराग रखते हैं, अतः उन्हें जलाशय, उद्यान आदिकी व्यवस्थाहेतु उत्प्रेरित करनेके लिये शास्त्रोंमें कहा गया है कि '**कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान् विनिवेश्य च। देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्माभिवृद्धये॥**'

अर्थात् भाँति-भाँतिके जलाशय (पुष्कर, कूप, तड़ाग) आदि जलके संसाधनकी व्यवस्था करके फल-फूलके उद्यान लगवाना चाहिये। तदुपरान्त देवस्थानका निर्माण करानेसे यश एवं धर्म दोनोंकी वृद्धि होती है। यही नहीं, ऐसे जलाशय, उपवन आदिके अधिकाधिक निर्माणको उत्प्रेरित करनेके लिये ही कदाचित् वहाँ देवताओंके वासकी बात शास्त्रोंमें कही गयी है—

स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः॥

अर्थात् जहाँपर पहलेसे जलाशय, सरोवर, वापी आदि जलकी समुचित व्यवस्था हो अथवा भक्तोंद्वारा उद्यान, उपवन आदि लगवाये गये हों, वहाँ देवता स्वतः निवास करते हैं।

पर्यावरण तथा प्राकृतिक वातावरण एवं जल तथा वायु आदिकी शुद्धता तथा ऋतुचक्रके सन्तुलन बनाये रखनेके आशयसे ही कदाचित् शास्त्रोक्त है कि—

वनोपान्तनदीशैलनिर्झरोपान्तभूमिषु ।
रमन्ते देवता नित्यं पुरेषु वनवत्सु च॥

अर्थात् वनोंके समीप सरिताओंमें, पर्वत-शृंखलाओंमें, झरनोंके समीप, उद्यान और उपवनोंसे युक्त नगरोंमें देवी-देवता रमण करते हैं।

ऐसे प्राकृतिक वातावरणमें पशु-पक्षियोंकी बातके बिना पर्यावरणका सौन्दर्य अधूरा होगा; क्योंकि जलाशय, झरनों, सरोवरोंसे पशुओंकी प्यास भी तो बुझती ही है साथ ही पशु-पक्षियोंके कलरवसे वातावरण भी मनोरम होता ही है, इसीसे शास्त्रोक्त है कि—

हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकीवरादिषु ।
पर्यन्तविचुलष्ठाया विश्रान्तजलचारिषु ॥

अर्थात् जिन सरोवरोंमें हंस-कारण्डव, क्रौंच, चकवा, चकई पक्षियोंके कलरव व्याप्त हों, जिसमें तरुओंकी छायामें पशु-पक्षी ग्रीष्म, धूप आदिसे बचाव एवं विश्राम करते हों, वहाँ सदैव देवताओंका वास होता है।

इस प्रसंगमें ज्ञातव्य है कि पुराणोंमें अपराधोंके लिये दण्डनीतिकी सम्यक् व्यवस्था विहित है, मत्स्यपुराणके अध्याय २२७ में शासकों तथा नृपोंके लिये सम्पूर्ण दण्डनीतिका निरूपण किया गया है। इसी दण्डनीति-निरूपणमें हत्या, बलात्कार आदि जघन्य अपराधोंके साथ पर्यावरण-संरक्षण-क्रममें वृक्षों एवं फले-फूले वृक्ष-लता-गुल्मादिके नष्ट किये जाने सम्बन्धी दण्डकी व्यवस्था की गयी है। यथा—

फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्॥
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्।

अर्थात् फल देनेवाले तरु, पुष्पित लताएँ, गुल्मों, वल्लियों तथा जिनमें फूल लगे हों और बादमें फल लगनेवाले हों, उन्हें काटनेपर राजाओंद्वारा दण्डित किये जानेकी व्यवस्था विहित थी।

इसी प्रकार खेतों तथा वनोंमें उगी हुई वनस्पति एवं औषधिके अनधिकृत रूपसे काटनेपर भी दण्डकी व्यस्था थी, यथा—

कृष्टानामोषधीनां च जातानां च त्वयं वने।
वृक्षच्छेदेन गच्छेत दिनमेकं पयोव्रती॥

अर्थात् वृक्षादिके काटे जानेपर राजा देश, काल, समय, स्थितिके अनुसार प्रायश्चित्त अथवा दण्ड आरोपित करता था। खेतमें स्वयं उगी हुई या जुताई-बुआईके पश्चात् उत्पन्न हुई अथवा वनमें ऋतु-क्रममें उत्पन्न ओषधियों आदिके काटनेपर भी दण्डका प्रावधान था।

चोरीके लिये दण्डकी व्यवस्था तो थी ही साथ ही चौर-कर्ममें जिन अंगोंका प्रयोग किया गया हो, उन्हें काटे जानेका भी विधान पौराणिक दण्ड-नीति-निरूपणमें था। यथा—

अन्नेषु परिपूर्णेषु दण्डःस्यात् पञ्चमाषकम्।
परिपूर्णेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च॥
निरन्वये शतं दण्ड्यः सान्वये द्विशतं दमः।
येन येन यथाङ्गेन स्तेनोऽन्येषु विचेष्टते॥

(मत्स्यपुराण २२७। १०८-१०९)

अर्थात् फूल, कच्चा अन्न, गुल्म, लता, वल्ली उखाड़ने-काटने, तोड़ने तथा अन्नकी चोरी करनेवालोंको स्वर्णदण्डका विधान था। इसी प्रकार अधिक मात्रामें अन्न, शाक, मूल और फल आदिको उखाड़ने, काटने या चुरानेके लिये भी दण्डका विधान था। उसके साथ ही यह भी विधान था कि जो उक्त भाँति चोरी करनेहेतु शरीरके जिस अंगका प्रयोग करे, उसे राजा कटवानेका दण्ड दे सकता था।

पर्यावरण-संरक्षण तथा पर्यावरण-प्रदूषण-निवारणके विषयमें संस्कृतके मूर्धन्य तथा महाकवि कालिदास, भवभूति, भास एवं वाल्मीकि आदि भी कम जागरूक, विशेषरूपसे प्रदूषणको इंगित करते हुए रघुवंशमें समागत ऋषि कौत्स और रघु-संवादमें आशंका व्यक्त करते हुए कहा था—

निवर्त्यते यैर्नियमाभिषेको
येभ्यो निवापाञ्जलयःपितॄणाम्।
तान्युञ्छषष्ठांकितसैकतानि
शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्॥

अर्थात् जिन-जिन स्थानोंपर तुम जलमें स्नान करते हो, जिसमें अपने पितरोंका तर्पण करते हो या जल देते हो, जिसके किनारे हमारे लिये अन्न उपजका छठा भाग निकालकर रखते हो, ऐसे तुम्हारे तीर्थोंके जल प्रदूषित तो नहीं हैं।

परंतु विडम्बना है कि आज तो तीर्थोंके ही जल प्रदूषित हैं।

सूर्योदयसे सूर्यास्ततक ऑक्सीजन प्रदान करनेवाले, काष्ठ एवं इमारती लकड़ी देनेवाले, भूमि-क्षरणको रोकनेवाले, फल-फूल-औषधी प्रदान करनेवाले वृक्ष पर्यावरण-संरक्षणमें कितने समर्थ हैं—यह जग विदित है। इसीलिये भारतीय संस्कृतिमें वृक्षारोपणका विशेष महत्त्व है। वृक्षोंकी परोपकारकी भावना एवं विनम्रताके सम्बन्धमें अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—'**भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः**' अर्थात् फलोंसे लदे वृक्ष विनम्रतासे झुक जाते हैं।

वृक्षोंकी परोपकारकी भावनाके विषयमें कहा गया है—

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥

अर्थात् वृक्ष स्वयं तीव्र धूपका ताप सहन करते हैं, किंतु उनकी छायामें विश्रामार्थी तथा बटोही शीतलता एवं छाया प्राप्त करते हैं, आशय यह कि स्वयं कष्ट सहन करके दूसरोंका ताप हरने, शान्ति तथा विश्राम प्रदान करनेवाले वृक्ष ही हैं।

भारतीय संस्कृतिमें वृक्षारोपणपर विशेष बल दिया गया है। यही नहीं, वृक्षारोपणको सबसे अधिक पुण्यदायी

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥
(अग्निपुराण)

अर्थात् एक बावली बनवानेसे दस कूपोंके समान, एक तालाब बनवानेसे दस बावलियोंके निर्माणका पुण्य प्राप्त होता है। एक पुत्रोत्पत्तिसे दस तालाबोंके बनवानेका पुण्य प्राप्त होता है और एक वृक्ष लगानेसे दस पुत्र उत्पन्न करनेके समान पुण्य प्राप्त होता है।

भारतीय संस्कृतिमें वृक्षोंको, पर्वतोंको पूज्य एवं पवित्र मानते हुए आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है। स्वयं श्रीकृष्णद्वारा पर्वतोंमें सुमेरु, वृक्षोंमें अश्वत्थवृक्ष होनेकी बात कही गयी है। यही नहीं, गोवर्धनपर्वतके पूजन तथा परिक्रमाकी रीति स्वयं श्रीकृष्णने ही परिचालित करायी थी। चित्रकूटमे कामदगिरिकी पूजा-परिक्रमाका विधान है। दीपावलीपर हजारों तीर्थयात्री कामदगिरिपर दीप प्रज्वलित करके कामनापूर्ति करते हैं। भगवान् कृष्णने पशु-पक्षी, सरितामे अपना वास बताते हुए कहा है कि 'मैं पशुओंमें सिंह, गौओंमें कामधेनु, जलचरोंमें मगरमच्छ, नदियोंमें गंगा, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, जलाशयोंमें समुद्र, अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, गजोंमें गजेन्द्र ऐरावत, सर्पोंमें वासुकि, नागोंमें शेषनाग, पक्षियोंमें गरुड़, ज्योतियोंमें सूर्य हूँ।' उनका यह कथन प्रकृति एवं पर्यावरणके संरक्षणका ही द्योतक है।

हिन्दू संस्कृतिकी एक झलक

एक बार बादशाह अकबरने रहीमकी परीक्षा लेनेके लिये उसको राणाप्रतापके विरुद्ध युद्ध करने भेज दिया। जिस प्रकार भीष्म पितामह पाण्डवोंकी विजय-कामना करते, किंतु कौरवोंके सेनापति होकर वीरताके साथ युद्ध भी करते थे, उसी प्रकार रहीम भी मनसे प्रतापकी विजय चाहते थे, पर मुगल सेनापति होकर राजपूत सैन्यको गाजर-मूलीकी तरह काटते थे।

भीलोंने प्रतापके पक्षमें युद्ध किया था। वे लोग मुगलोंकी कुछ बेगमोंको उठा लाये राणाप्रतापके पास। उन्होंने कहा मुगल लोग हमारी माँ-बहनों, बेटियोंको उठाकर ले जाते हैं, इसलिये हम भी उनकी माँ-बहनोंको उठाकर ले आये हैं। प्रतापने कहा, अरे! जंगली मूर्खदल! तुमलोगोंने यह क्या सर्वनाश किया। रणक्षेत्रमें तो हम जीते, किंतु चरित्रके क्षेत्रमें तो हम हार गये। तुमलोग महिलाओंको क्यों उठा लाये? मर्द तो मर्दके साथ युद्ध करते हैं, स्त्रियोंको स्पर्श करनेकी क्या आवश्यकता थी। इसके पश्चात् प्रतापने जाकर बेगमोंको प्रणाम करते हुए कहा, 'जो मस्तक कभी अकबर और मुगलोंके सामने नहीं झुका, वह आज क्षमा-याचनाके साथ झुक रहा है।' फिर उन सबको पुरस्कृत एवं अलंकृत किया और सम्मानके साथ उनको उनके पतियोंके पास भेज दिया।

उन बेगमोंने कहा—हमलोगोंने सुना है कोई पैगम्बर, मसीहा या खुदाका प्रेरित दूत संसारमें आता है, किंतु हमलोगोंने उसको देखा नहीं था। हाँ, आजके प्रतापजीको हमने प्रत्यक्ष देखा है। आप सचमुचके देवदूत हैं। आज हम समझ सके कि मनुष्य किस प्रकारसे फरिश्ता (देवदूत) होकर रहता है।

बेगमोंके ससम्मान वापस जानेपर रहीमने राणाप्रतापको लिखकर भेजा—

धर्म रहसि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण। अमर विश्वंभर ऊपरे, रखियो निहचो राण॥

हे राणाप्रताप! धर्म रहेगा तो धरा भी रहेगी, यह खुरसाण (मुगल) तो नष्ट हो जानेवाला है। इसलिये अमर विश्वम्भर भगवान् महादेवपर अपना दृढ़ निश्चय रखकर संघर्ष करते जाओ।

यह थी प्रतापके चरित्र और हिन्दू संस्कृतिकी महान् विशेषता कि दुश्मन भी उनके गुण गाते थे।

[स्वामी श्रीसंवित सुबोधगिरिजी]

'माधौ! नैक हटकौ गाइ'

[एक भावचित्र]

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू-
स्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥

(कठोपनिषद् २।१।१)

बड़ी ही चंचल और बहिर्गामिनी हैं, ये इन्द्रियरूपी गायें। अन्तःकरणरूप व्रजके भीतर तो ये जैसे घुसना ही नहीं चाहतीं, लगता है विधाताने इनका स्वभाव ही ऐसा बना दिया है। विषयोंके अपाततः हरित दीखनेवाले तृणोंके लोभमें ये विभिन्न दिशाओंमें भाग रही हैं और मैं हूँ कि 'पुरुषार्थ' की छोटी-सी लकुटिया लिये दौड़ रहा हूँ इनके पीछे।

बस, अब हार गया—थक गया—दौड़ते-दौड़ते। इनको वशमें करना मेरी शक्तिकी बात नहीं है। ये बनैली गायें—इनके लिये तो कोई 'गो-पाल' ही खोजना पड़ेगा। 'गोपाल', हाँ जो सचमुच इनके पालन करनेकी कला जानता हो। ये दुष्ट हुईं तो क्या, इन्हें मैं किसी ऐसे निष्ठुरके हाथ तो सौंप नहीं सकता, जो इन्हें बाड़ेमें घेरकर सब दरवाजे बन्द करके सो जाय और चारा-पानीके बिना ये सूखती रहें भीतर-ही-भीतर। स्वयं तो 'गगनगुफा' से झर रहे 'अमृत' का आस्वादन करे और इनको सुखा डालनेकी पूरी निष्ठुरता धारण किये हो, ना बाबा! ऐसे किसी 'हठयोगी' के हाथोंमें तो नहीं पड़ने दे सकता मैं इन्हें।

आखिर ये गायें हैं, भोली-भाली और मातृस्वभावा। माना कि ये पशु हैं और विषयोंके बीहड़में भटकती, अधिक उद्दण्ड पूरी 'वन्या' हो रही हैं, फिर भी ये मुझे पयःपान कराती हैं, माताकी भाँति मेरे पोषणके लिये सचेष्ट रहती हैं, तब इनको यन्त्रणा देनेका पाप.... राम! राम! यह तो मुझसे नहीं होगा।

'मैं क्या चाहता हूँ?' अब यह भी कोई पूछनेकी बात है। एक गायोंका स्वामी, एक सफल गोपालके अतिरिक्त और चाहेगा भी क्या? पर हाँ, मुझे केवल 'ग्वाला' नहीं—'गो-पाल' चाहिये, आप करेंगे मेरी सहायता—किसी ऐसे सफल—गोपालका नाम-पता बतला सकेंगे मुझे?

अरे यह क्या? मैं क्या कोई स्वप्न देख रहा हूँ? ओह! अनन्त-अनन्त गायें, विभिन्न रंगोंकी भिन्न-भिन्न आभूषणों एवं मालाओंसे सजी हुई, सभी स्वस्थ, तृप्त और मन्थरगामिनी। कहीं तो कोई तो चंचला नहीं दीख पड़ती, कोई भागती नहीं, किसीमें भी कहीं जानेकी पूँछ उठाकर दौड़ पड़नेकी त्वरा नहीं है। और इनके पीछे कौन है यह नवघनसुन्दर, पद्मदलायतलोचन, वनमाली, पीताम्बरपरिधान मयूरमुकुटी? सहस्रों गोपकिशोर इसे घेरे हुए हैं, उन सबके बीच-सबके साथ, सहज आत्मीय गतिसे नाचता-थिरकता-सा चलनेवाला यह अनोखा बालक!

पैरोंमें नूपुर रुन-झुन कर रहे हैं, कटिके पटुकेमें वंशी खोंस रखी है, एक हाथ सखाके कन्धेपर तो दूसरेसे लकुट घुमाता, हँसता-हँसाता यह चला जा रहा है सबके साथ और गौएँ तो मानो इसका संकेत ही समझती हैं। सब बिना हाँके चली जा रही हैं, तब क्या यही गोपाल है?

'कनूँ'—दो अक्षरका यह प्यारा-सा नाम। किसी सखाने पुकारा और इसने दौड़कर कन्धेपर हाथ रख दिया उसके। 'श्याम!' कोई दूसरा वनकी किसी अद्भुत वस्तुको दिखाकर इसे चौंका देना चाहता है, तो कोई पीछेसे आकर चलते-चलते आँख-मिचौनी खेलनेकी धुनमें है।

अच्छा, तो यही वृन्दावन है और यह गोकुलके राजा नन्दरायका लाडला श्यामसुन्दर है—इन्द्रियसमूहके अधिष्ठाता परिच्छिन्न, आनन्दको अनन्त गुणा कर देनेवाला नन्दनन्दन तब सचमुच ही यह 'गोपाल' है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई 'गोपाल' हो ही नहीं सकता।

युग-युगसे अनेकानेक योनियोंके वात्याचक्रमें दिग्भ्रान्त, पीड़ित, अतृप्त, मेरी इन इन्द्रियोंको यह अवश्य अपनी रूपमाधुरी और लीला-माधुरीसे आप्यायित करेगा, अवश्य इन दिव्य गौओंके बीच मेरी दुर्बल धेनुएँ भी रम जायँगी।

× × × ×

कन्हाईने यह सगुण-साकार विग्रह धारण ही इसीलिये

अपने वास्तविक रूपसे तो यह 'गोप' ही है।

'विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।' (ऋग्वेद १। २२। १८)

उसका नित्यधाम भी गायोंसे भरा 'गोलोक' ही है—

यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः। (ऋग्वेद १। १५४। ६)

और उसके प्रपंचमें अवतरणकी भूमिका भी प्रधानतः इन भगवती गौओंके कारण ही मानी जाती है। गो-ब्राह्मण-हितके अनन्तर ही तो जगद्हित सम्पन्न हो पाता है—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्हिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

गो-ब्राह्मण—भूलिये मत, इनका आध्यात्मिक अर्थ भी है और तात्त्विक दृष्टिसे वही प्रधान अर्थ है। 'गो' अर्थात् सम्पूर्ण जीवोंकी इन्द्रिय समष्टि—'**गावस्तु इन्द्रियाण्युक्ताः**' और 'ब्राह्मण' अर्थात् समष्टिचेतनको तादात्म्यरूपसे एकीकृत कर लेनेवाला अध्यात्मचिन्तन। श्रीकृष्णका अवतार मुख्यतः गोकुल या व्रजमें ललित लीलाओंके विस्तारहेतु ही हुआ है। अध्यात्म-पक्षमें यह इन्द्रियोंका आश्रयस्थान शरीर ही 'गोकुल' या 'व्रज' है, जन्म-जन्मकी अतृप्त भटकती इन्द्रियोंको अपने अनुरागका सम्पोषण देनेहेतु यह चिर-गोपाल कृष्णचन्द्र, स्वयं भक्तके हृदयमें बन्दी बन जाता है—बन्दीगृहमें जन्म लेता है—'**सद्यो हृद्यवरुध्यते**…।' (श्रीमद्भा० १। १। २)

'**कसि हिंसायाम्**' धातुसे निष्पन्न 'कंस'-पद जीवके उत्पीडक 'महामोह या अज्ञानका व्यंजक है। हृदयको इसने बन्दीगृह बना रखा है। श्रीकृष्ण, '**सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितम्**' (श्रीमद्भा० ४। ३। २३)-के द्वारा संकेतित सत्त्वगुणरूप 'वसुदेव' और दैवीसम्पत्-स्वरूपा 'देवकी' की आर्त पुकारपर इस कंसके वधका प्रयोजन लेकर मथुरा अर्थात् 'मधुपुरी' में अवतीर्ण हुए। किंतु कंसका वध तो तब न होगा जब श्रीकृष्ण 'गोपाल' बनकर इन्द्रियोंको आत्मानुकूल बना लेंगे, इसके बिना तो मोह मरता नहीं, इसलिये इसके पहले गोकुलमें ये भगवत्सम्पृक्त इन्द्रियजन्य आनन्दके प्रतीक बाबा नन्दके यहाँ गोपाल बनकर क्रीडा करते हैं। भाववरूप-नित्यवृन्दावनमें यह 'नित्य लीला' एक आध्यात्मिक सत्य है। श्यामका गायोंके प्रति विशेष पक्षपात है, इसीलिये इसने इन्द्रमख-भंगकर 'गोवर्धन' अर्थात् गौओंके हितैषी गिरिराजकी पूजा करवायी।

'इन्द्र' सकाम कर्मोंका अधिष्ठाता है और 'गोवर्धन' है ब्राह्मसुखानुभवशालिनी इन्द्रियोंका पोषक श्रीकृष्णका स्वात्मानन्द कामनामुक्तिके सोपानमें इन्द्रियोंको धारासम्पातके भीषण प्रकोप अर्थात् अत्युग्र कामनावेगमें अवश विपन्न होते देखकर इस नटखटने अपने स्वरूपानन्दकी छत्रछाया करके सुरक्षित रखा और तबसे यह गोवर्धनधर 'गोविन्द' हो गया, गोरूपा इन्द्रियोंका इन्द्र। वस्तुतः यही तो इनका सच्चा स्वामी है। हम और आपने तो व्यर्थ इनपर स्वामित्व आरोपित कर रखा है कहना यह कि हम इनके 'स्वामी' नहीं 'अनुगामी' ही हैं इनको इनके वास्तविक स्वामीको सौंप दें तो दोनोंका भटकना बन्द हो जाय। इनके सहारे हम भी गोविन्दको प्राप्त कर लें, क्योंकि 'गोविन्द' शब्दकी व्याख्या ही ऐसी है, जो इन्द्रियोंसे प्राप्त हो, वही तो गोविन्द हैं—

'गोभिरिन्द्रियैः प्राप्यत असौ गोविन्दः'

इन दुर्बल और असक्त गायोंको श्यामसुन्दर ही जब आवश्यक समझेगा, '**क्लीं**' कामबीजमन्त्रनिनादिनी वंशीके द्वारा समीप बुलाकर अपने गोकुलमें सम्मिलित कर लेगा और तब इन बहिर्गामिनी इन्द्रियोंसे ही सारा विश्व कृष्णमय दीखने लग जायगा, अभी तो केवल प्रतीक्षा करनी है, गोपालकी नन्दनन्दनकी अथक प्रतीक्षा।

× × × ×

तब मैं भूल गया था, सचमुच भूल गया था। मैं प्रतीक्षा करूँगा, अवश्य प्रतीक्षा करूँगा उस गोपालकी।

'गोपाल! सखे श्यामसुन्दर! मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ, आओ इन गायोंको अपने अनन्त गो-यूथमें मिलाकर इनमें मेरा आरोपित स्वामित्व हटा दो, इनके साथ मुझे भी अपना बना लो। देखो! देखो! ये व्यर्थ दौड़ रही हैं बीहड़ कण्टकवनमें भटकती दुर्बल हो रही हैं, गो-प्रिय, गोविन्द! मुझपर न सही, इनपर तो दया करो, मैं तो थक गया श्लथ हो गया, अब तुम्हीं जानो। तुम्हीं रोको इन अपनी गायोंको—

माधौ! नैक हटकौ गाइ।
भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ।
छुधित अति, न अघात कबहूँ, निगम द्रुमदल खाइ।
अष्टदस घट नीर अँचवति तृषा तउ न बुझाइ।
नारदादि सुकादि मुनि-जन थके करत उपाइ।
ताहि कहु कैसें कृपानिधि! सकत सूर चराइ।

तीर्थ-दर्शन—

त्रिपुराका उनाकोटि शिवलोक

(श्रीरामजी शास्त्री)

देशके पूरबमें उनाकोटि पर्वतमालामें एक करोड़के आस-पास पत्थरपर उत्कीर्ण शिव-प्रतिमाओंका रहस्यमय मिथकीय शिवलोक है। यहाँकी स्थानीय भाषामें उनाकोटिका अर्थ होता है—करोड़में एक कम। आर्ष-ग्रन्थोंमें परमेश्वर विश्वेश्वर साम्ब सदाशिवको सहस्राक्ष, सहस्रपाद, सहस्रहस्त, सहस्रशिर बताया गया है। इसके अलावा प्राणिमात्रके स्वामी पशुपतिनाथके कोटि (करोड़ों) रूपोंका वर्णन मिलता है। आध्यात्मिक तात्त्विक रूपसे यह निराकार ब्रह्म चिदानन्द शिवके निराकार सर्वव्यापी स्वरूपकी अर्चना है।

भारतके पूर्वोत्तर भागमें त्रिपुरा राज्य स्थित है। इसीके उत्तर त्रिपुरा नामक जिलेको २०१२ ई०में विभाजित करके उनाकोटि जिला गठित किया गया। यह स्थान त्रिपुरा*की राजधानी अगरतलासे १७८ किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। यहाँ पर्वतोंपर अनन्त रूपाकार उकेरी हुई शिव-प्रतिमाएँ कैलास-लोकका जीवन्त दर्शन करवाती हैं। विपुल परिमाणमें प्राप्त प्राचीन हिन्दू प्रतिमाओंके मिलनेके कारण इसे भारतमें उत्तरपूर्वका अंकोरवाट भी कहा जाता है।

अगरतलासे उनाकोटि कैलासपुरीका रास्ता चार धाम तीर्थयात्राका स्मरण करवाता है। उनाकोटि इंका प्राचीन सभ्यता-संस्कृतिका नवकलेवर लिये चित्रलिखित करनेवाली कृति है। इंकाके प्राचीन परम्पराके चमत्कार

* त्रिपुरामें भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरीका भव्य मन्दिर है, उन्हींके नामपर इस राज्यका नाम त्रिपुरा पड़ा। इस राज्यके राधाकिशोरपुर ग्रामसे लगभग ३ कि०मी० की दूरीपर नैर्ऋत्यकोणमें पर्वतपर यह शक्तिपीठ स्थित है। यहाँ देवीदेहका दक्षिणपाद गिरा था। यहाँकी शक्ति

करनेवाले ओझा मौनमें ही संवादकर विचार-प्रेषणमें आर्यावर्तके द्रष्टा ऋषियोंकी तरह सक्षम मिलते हैं। कैलासपुरी उनाकोटिके त्रिपुराके ठेठ देहाती पुजारी भी भाषाके अलगावमें मौनमें ही आशीर्वाद देते हैं।

मिथकीय उनाकोटिके द्वारपर लाल रंगकी काष्ठनुमा देहरीके पीछे लम्बी उत्कीर्ण शिवमुखाकृति चुम्बकीय आकर्षणसे खींचती है। पर्वतमालाके श्याम बलुआ पत्थरपर देवताओंके शिल्पकार विश्वकर्माद्वारा ९९ लाख ९९ हजार ९ सौ निन्यानवे शिव आकृतियाँ उकेरनेके दैविक चमत्कारकी मिथकीय गाथा है। यह चकित करनेवाली बात है कि कुछ शिवमुखाकृतियाँ ३० से ४० फीटकी भी हैं। विश्वकर्माने शिवके तीसरे नेत्र और अर्धनिमीलित मुद्रामें नेत्रोंको सजीव साकार किया है। सदियोंसे स्थानीय पुरोहितका परिवार सबसे बृहद् शिवमूरतके नीचे पत्थरशिलापर फूल और कुंकुमसे पूजा-अर्चना करता है। मूरतके नीचे शिवको प्रिय लाल पुष्प चढ़े हुए हैं। आसपास गेरुआ वस्त्र पहने साधु भी घूमते दिख जाते हैं। पुजारी कैलासलोक आनेवालोंको प्रसाद भी देते हैं। कहीं रौद्र मुद्रामें शिव युद्धको तत्पर हैं।

इस उनाकोटिकी कैलासपुरीमें एक करोड़में एक कम मूरत बननेकी अनेक मिथकीय गाथाएँ हैं। इन्हीं मिथकीय गाथाओंमें-से एकके अनुसार कालू कुम्हार प्रजापतिको स्वप्नमें दिखायी दी देवताओंकी मूर्तियाँ उनाकोटि पर्वतपर तक्षित करनेका उत्तरदायित्व सौंपा गया। कालू कुम्हार प्रजापतिने पर्वतपर मात्र सदाशिव महादेवकी विविध आकारवाली मूर्तियाँ ही तराशीं। मिथकके अनुसार मूर्ति अहंकारसे मुक्तिके लिये 'ईश्वर एक है, अभेद है' का सन्देश देती है।

दूसरे मिथकमें कथामें मामूली अन्तर है। जगज्जननी उमाका प्रिय पात्र कालू कुम्हार था। कालू कुम्हारकी आन्तरिक इच्छा कैलास जानेकी थी। संयोगसे विश्वनाथ महादेव भगवती पार्वतीके साथ त्रिपुरा होते कैलास मानसरोवर जा रहे थे। कुम्हारने राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरीसे कैलास जानेकी कामना प्रकट की। देवी पार्वती भी कालू कुम्हारपर प्रसन्न थीं। लेकिन महादेव शिव इस प्रस्तावपर असहज थे। इसके समाधानके लिये रुद्राणी ललित पार्वतीने सुझाव दिया कि यदि एक रात्रिमें कालू कुम्हार 'एक करोड़ शिव-आकृति' तक्षित कर देगा तो वह हमारा सहयात्री होगा। यहीं औढरदानी शिवकी लीला शुरू हुई। अगले दिन सूर्योदयतक विश्वकर्मा कालू निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे (९९९९९९९) शिव मुखाकृतियाँ ही उत्कीर्ण कर पाया। एक शिवमूरतकी कमीके कारण कालू कुम्हार कैलास नहीं जा सका।

वैसे उनाकोटिसे १० किमी नीचे शिवशहर है। कहते हैं एक बार काशीकी ओर प्रस्थान करते समय महावेशधारी महारुद्र शिवने शिवशहरमें गणोंके साथ रात्रि-विश्रामहेतु डेरा लगाया। भोरकी पहली किरण फूटनेपर कैलास कूचका आदेश हुआ। एक बार फिर शिवलीलाने इन्द्रजाल रचा। सूर्योदयपर ९९९९९९९ गण नहीं उठे। महारुद्रने आवेशमें सभीको पत्थरपर अंकित होनेका शाप दिया। इस प्रकार उनाकोटि पर्वतपर एक करोड़में एक कम शिवगण शिवमूर्तिरूपमें विराजमान हैं।

पुरातत्त्ववेत्ता उनाकोटिका रचनाकाल ८वीं एवं ९वीं शताब्दी मानते हैं। उनके अनुसार आठवीं शतीमें उनाकोटि सुप्रसिद्ध शिवतीर्थ रहा। आठवींसे बारहवींमें क्षेत्रमें पॉल वंशका राज रहा। शिवभक्तोंके लिये यह बहुत दुःखकी बात है कि सन् १९४७ से अद्यतन पुरातत्त्व विभागने उनाकोटि शिवतीर्थपर कोई शोध नहीं किया। यह रहस्य है कि आखिर समूची पर्वतमालापर महादेव शिवकी मूर्तियाँ उकेरनेका प्रयोजन क्या था? शिवमुखकी सम्मोहित करती आँखें और भावातीत जगत्में ले जाता तीसरा नेत्र शिल्पीकी दैविक शक्तिका साक्षात्कार करवाती हैं। महादेवकी गर्दनके कन्धेके बन्धको छूते कर्ण भी अद्भुत हैं। यह चकित करनेवाला है कि उनाकोटिके पर्वत आपसमें प्रस्तर सीढ़ियोंसे जुड़े हैं। एक शिखरपर कुण्डमें स्नान करते शिव या शिवाके रक्षकके रूपमें तीन गणेश मिलते हैं। शिवलोककी मूर्तियाँ हजारों वर्ष पुरानी हैं, आवश्यकता है इनके संरक्षणकी; क्योंकि ऐसी मूर्तियाँ अन्यत्र दुर्लभ हैं।

कहानी—

नामका आश्रय

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

'**ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्**' उसका स्वर उच्च हो गया था। घाघरामें बहते हुए शवको पकड़कर उसने सन्ध्याके झिलमिले प्रकाशमें ही तैरकर निकाल लिया था। शव जलसे फूल गया था। उसे कहीं-कहीं कछुए और मछलियोंने भी नोच लिया था। उस समय उसके उन स्थानोंसे सफेद मांस दिखायी पड़ता था। उसके फूले हुए वक्षपर जब वह आसन लगाकर बैठा तो ढेर-सा जल शवके मुखसे निकल पड़ा। अब घोर अन्धकारमें यह सब दिखायी नहीं पड़ता।

उसने शवके मस्तकपर रक्त-चन्दनका तिलक किया था। गलेमें रक्त कनैर कुसुमोंकी माला डाली थी। कुंकुम छिड़का था सर्वांगपर। रक्तवस्त्र पहनकर वह भी इन्हीं उपकरणोंसे आभूषित हुआ था। घृत, अक्षत सब कुंकुमारुण कर दिये गये थे। बेचारा बकरीका छोटा-सा काला बच्चा गलेमें कनैरकी मालासे उलझता बार-बार चिल्ला रहा था।

आश्विनकी रात्रिमें भी बादल थे आकाशमें। घाघराका जलप्रवाह मानो किसीकी क्रूर हँसी हो। आज दुर्गाष्टमी है। अर्धरात्रितक चन्द्रमाका धुँधला प्रकाश रहा और अब तो महाश्मशान घोर अन्धकारकी यवनिकामें अत्यन्त भयंकर हो उठा है।

जबतक मन्द प्रकाश था, इधर-उधर पड़े कपाल, शृगालोंसे नोचे जाते शव, बुझी चिताओंकी भस्मराशि प्रत्यक्ष थी। फिर भी प्रकाशने एक साहस दे रखा था। अन्धकारमें स्थान-स्थानपर बुझती चिताओंसे कभी-कभी सहसा लपट फूट पड़ती है। उलूकका भयानक स्वर दिशाओंको झकझोर जाता है। शवोंपर लड़ते शृगालोंकी किच-किच बराबर गूँज रही है।

वायुमें चिताओंकी चिराँयध, सड़ते शवोंकी दुर्गन्धि भरी है। नाक फटी जाती है। उसने सर्वांगमें इत्र मल रखा है, फिर भी क्या इससे यह दुर्गन्धि दबेगी। यद्यपि जिस शवपर वह बैठा है, उसे उसने इत्रसे नहला दिया

एक अधजली चिताके समीप उसने शवासन लगाया है। चिताकी लपटोंके रक्तिम प्रकाशमें उसका काला शरीर जैसे रक्तसे स्नान कर गया है। उसके नेत्र सम्मुखके अंगारोंके समान जल रहे हैं। उसकी लट बनी रूखी जटाएँ, मानो धूम्रवर्ण सर्प सिर तथा कन्धोंपर लटकते हों। गलेमें हड्डियोंकी माला है। चितामें वह बराबर आहुति डाल रहा है। बायें हाथमें उसने किसी मनुष्यके पैरके जंघेकी हड्डी इस प्रकार पकड़ रखी है, मानो वह कोई महाशस्त्र हो। यद्यपि दाहिनी ओर भयंकर खाँड़ा लपटोंमे चमक रहा है। खाँड़ा उसने शवके दाहिने हाथपर रख छोड़ा है।

'**ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्**' उसका कण्ठ तीव्रसे तीव्रतर होता जा रहा है। उसका दाहिना हाथ बराबर आहुतियाँ डाल रहा है चितामें। सहसा वायुमें सरसराहट प्रारम्भ हुई मानो चारों ओर सहस्त्रों सर्प श्वास ले रहे हों। एक क्षणको उसका हाथ रुका। उसने वह हड्डीका स्रुव एक ओर रखा। पीली सरसों उठायी और कुछ गुनगुनाकर चारों ओर फेंक दी।

सरसराहट बढ़ती गयी। मानो आँधी आ रही हो धीरे-धीरे कुछ छायामूर्तियाँ प्रकट होने लगीं। चिताकी लपटोंके प्रकाशमें बड़ी भयावह थीं वे मूर्तियाँ। मानव कंकाल—मांस, चर्म एवं स्नायुओंसे शून्य केवल अस्थिकंकाल थे वे। अस्थिके हाथोंसे ताली बजाकर वे नाच रहे थे। खड़खड़ाकर अट्टहास कर रहे थे। उसके चारों ओर थोड़ी दूरीपर ऐसे पिशाचोंका एक समुदाय घेरा बनाकर नाच रहा था। उसने उधर देखा ही नहीं वह तो बराबर आहुति दे रहा था। निर्भय-निष्कम्प-स्थिर।

'**ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् महाभैरवाय स्वाहा**' सहसा उसने उस शवके मुखमें एक आहुति डाल दी, जिसपर वह बैठा था। मानो आकाश फट गया हो। बड़ी विकराल थी वह हँसी। सारे पिशाच भयके मारे सन्न हो गये थे

कर दिये गये हैं। शवने मुख फाड़ दिया था और यह हास्य उसीका था।

वह शवपरसे शीघ्रतासे उतर गया। पासमें रखी नौ बोतलोंका मुख तीव्रतासे खोलता गया और उनकी मदिरा शवके मुखमें उड़ेलता गया। झटसे उसने बकरेको पकड़ा और घसीटकर शवके पास ले आया। भयके मारे बकरेका आर्त क्रन्दन भी बन्द था। खाँड़ेके एक वारने मस्तक अलग कर दिया। शवके मुखमें रक्तकी धारा पड़ी। अन्तमें बकरेका सिर उसने शवके मुखपर गिरा दिया। ओह, कच-कच करके शवने उस सिरको चबा डाला।

'बलि! बलि! महाबलि!' बड़ा भयंकर स्वर था। शव बोल रहा था। उसने नेत्र खोल दिये थे। उसके नेत्र जैसे किसी गुफाके भीतर दो अंगारे जल रहे हों। पिशाच स्तब्ध खड़े थे।

'तू ही बुला उसे' वह कापालिक निर्भय था। उसने शवके उस हाथमें जहाँसे खाँड़ा उठाया था, थोड़ी पीली सर्षप रख दीं।

'बलि! बलि! महाबलि!' शव पुनः चिल्लाया। उसने वह हाथ उठाया और कापालिककी अंजलिमें सर्षप डाल दीं। बाकी वह ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा। कापालिकने सरसोंमेंसे कुछ एक ओर फेंक दीं और इस बार वह बड़ी भयंकर हँसी हँसने लगा। पिशाचोंके घेरेके बीच वह एक महापिशाच जान पड़ता था।

[२]

'पिताजी, सिर दर्द कर रहा है। मन जाने कैसा हो रहा है।' युवक जैसे स्वयं सौन्दर्य ही है। लम्बा इकहरा शरीर, गौरवर्ण, बड़े-बड़े नेत्र। खादीकी धोती और कुर्तेमें उसकी आकृति बड़ी मनोहर जान पड़ती है। आज उसका मुख उदास हो रहा है। जैसे विकच पाटल सूर्यके प्रखर तापसे कुम्हला गया हो। 'भोजन किया ही नहीं जाता। लगता है कोई कहींसे बुला रहा है। तनिक घूमने जाता हूँ।'

पण्डित श्यामसुन्दरजी यहाँके सम्पन्न व्यक्ति हैं। विशाल भवन एवं उपवन बना रखा है। कई नौकर हैं माली है। कोई अभाव नहीं। घरमें उनकी पत्नी हैं और युवा पुत्र है। पुत्र जितना सुन्दर है, उतना ही सुशील भी इसी वर्ष वह काशीसे आचार्य होकर लौटा है। एकमात्र सन्तानपर वृद्ध दम्पतीका असीम स्नेह है। इसी वर्ष उन्होंने अपने कृष्णकुमारका विवाह किया है। नगरमे पण्डितजीका सम्मान है। वे आस्तिक हैं, विद्वान् हैं, नम्र हैं। सभी आस्तिक जन उनका आदर करते हैं।

भवनके चारों ओर उपवन है और उपवनके एक कोनेमें श्रीराधा-कृष्णका भव्य मन्दिर है। पण्डितजीने भगवान्‌के शृंगारमें पूरा व्यय किया है। मन्दिरमें पुजारी तो केवल मन्दिरकी स्वच्छताके लिये है। पूजा तो दोनो समय स्वयं पण्डितजी ही करते हैं। प्रत्येक पर्वोत्सव बड़ी धूम-धामसे मनाया जाता है। सभी आस्तिकजन आ जाते हैं। नित्य सायं मन्दिरमें जमकर दो घंटे संकीर्तन होता है। स्वयं पण्डितजी जब करताल लेकर खड़े होते हैं तो नृत्य करते समय वे गौरांग महाप्रभुकी मण्डलीमे खड़े अद्वैताचार्यका स्मरण कराते हैं।

आज पत्नीने सूचना दी कि कृष्णकुमारने भोजन नहीं किया। पण्डितजीने भगवान्‌का प्रसाद ले लिया था मन्दिरके प्रांगणसे ढोल एवं हारमोनियमकी ध्वनि आ रही थी। संकीर्तन-प्रेमीजन वहाँ पहुँच गये थे। वाद्य ठीक किये जा रहे थे। पण्डितजीकी प्रतीक्षा हो रही थी उन्होंने संकीर्तनके लिये उठते समय पुत्रसे बुलाकर उसके भोजन न करनेका कारण पूछा।

'नहीं बेटा, आज तो तू कहीं मत जा!' पण्डितजीकी पत्नी पुत्रके साथ ही आयी थीं। 'मुझे वह सबेरेका साधु अभीतक नहीं भूला है। पता नहीं क्यों मुझे बहुत भय प्रतीत होता है।'

प्रातः जब भगवान्‌के पूजनसे निवृत्त होकर पण्डितजी पुत्र एवं पत्नीके साथ भवनके बाहर बरामदेमें खड़े थे, एक काला, लाल-लाल नेत्रोंवाला, भयंकर पीली जटाओंवाला साधु पता नहीं कहाँसे उनके सामने आ खड़ा हुआ था। उसके गलेमें हड्डियोंकी माला थी और

आकृति एवं चेष्टा बहुत ही भयानक लगती थी।

'तू, बस तू ही है!' वह साधु अपने-आप बड़बड़ाया था। 'इतने दिनोंसे मैं तुझे ही ढूँढ़ रहा था। हाँ, तुझमें चौबीस लक्षण हैं। बस, महाभैरव आज संतुष्ट हो जायँगे। तू धन्य है, महाभैरव तुझे स्वीकार करेंगे।'

'तुम अपना यह लड़का मुझे दे दो! बड़े भाग्यवान् हो तुम!' सहसा उसने पण्डितजीसे कहा।

'महाराज! आशीर्वाद दें!' पण्डितजीने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। 'मेरे यह एक ही पुत्र है!'

'तू महाभैरवका उपहार रोक लेगा? अच्छा!' बड़े विकट ढंगसे अट्टहास करता पागलोंकी भाँति वह दौड़ता हुआ चला गया।

पण्डितजीने पत्नीको आश्वासन दिया। 'माताकी बात मानो! चलो, अभी तो भगवान्‌का गुणगान करो!' उन्होंने पुत्रको आदेश दिया और उसको लेकर ही मन्दिरकी ओर चल पड़े। कीर्तन उस दिन खूब जमा और मध्यरात्रिके पश्चात् जब आरती करके वे लौटे भगवान्‌के शयनके पश्चात् तो पत्नीके पूछनेपर उन्हें पता लगा कि पुत्र उनके साथ नहीं है।

बड़ी व्यग्रतासे अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। पत्नीने मालीको दौड़ा दिया। पुलिस-स्टेशन पास ही था और थानेदार पण्डितजीका आदर करते थे। आध घंटेमें ही वे चार सिपाहियोंके साथ आ पहुँचे। पण्डितजी अभीतक नौकरोंसे पूछ रहे थे। इधर-उधर कुछको दौड़ा चुके थे।

अन्ततः पता लगा कि कीर्तन समाप्त होनेपर मालीने कृष्णकुमारको बाहर जाते देखा है। मालीने बताया 'वे बहुत उदास थे। मस्तकपर पसीनेकी बूँदें चमक रही थीं। खम्भेकी बिजली बत्तीके प्रकाशमें उसने देखा था कि उनका मुख उतरा हुआ था। मालीके पुकारनेपर भी न तो बोले और न उसकी ओर देखा। बड़ी शीघ्रतासे चले गये।'

'ओह' पण्डितजीने दीर्घ श्वास ली। 'वह प्रातःका साधु! अवश्य कृष्णकुमार श्मशान ही पहुँचा होगा!'

'क्या बात है?' दारोगाने पूछा।

हुआ जान पड़ता है। साधु सम्भवतः उसकी बलि देगा। भगवान् रक्षा करें।'

'हम श्मशान जाते हैं' थानेदार राजपूत थे। भय क्या है, इसे वे जानते ही नहीं। उन्होंने पुलिसकी नौकरीमें बीस वर्ष भयंकर रात्रियोंमें चोर-डाकुओंका पीछा करनेमें ही काटा है। उन्हें श्मशान या जंगल भय नहीं देते।

'कोई लाभ नहीं, तान्त्रिककी शक्तिका सामना कोई भी शरीर या अस्त्र-शस्त्रसे नहीं कर सकता! व्यर्थ है तुम्हारा जाना! किंतु तबतक तो थानेदार उपवनका फाटक पार कर रहे थे। वे अनुभवी व्यक्ति थे और एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट करना उन्हें अभीष्ट नहीं था।'

'प्रभु शयन कर चुके! उनके विश्राममें बाधा एक पुत्रके लिये नहीं दी जा सकती।' पण्डितजीने स्वयं कहा और मन्दिरकी ओर मुड़कर भी रुक गये। 'रामाधीन!' सहसा उन्होंने मालीको पुकारा। आदेश दे दिया कि पड़ोसके कीर्तनप्रेमियोंको वह पुनः बुला ले और पण्डितजी करताल लेकर भवनके हालमें खड़े हो गये। वे सब कुछ भूलकर नेत्र बन्द किये पुकार रहे थे—

'कंसारि जय जय मुरारि जय जय।
माधव मुकुन्द हरि बिहारि जय जय॥'

(३)

जैसे किसीने गायके गलेमें रस्सी बाँध दी हो और उसे पकड़कर आगे खींच रहा हो। कृष्णकुमार खिंचे जा रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि उनके पैरोंके नीचे चिताभस्म पड़ रही है, हड्डियाँ दब रही हैं और उनकी ठोकरोंसे कपाल लुढ़क रहे हैं। उनके कान मानो उलूकका चिल्लाना, शृगालोंकी किचकिच तथा हुआँ-हुआँ नहीं सुन रहे थे। उनके नेत्र उस अन्धकारमें भी जैसे स्पष्ट मार्ग देख रहे थे। उनकी नासिकाको मानो वहाँकी दुर्गन्धिका अनुभव नहीं हो रहा था। वे बढ़ते जा रहे थे, बढ़ते जा रहे थे, उसी कापालिककी चिताकी ओर बढ़ते जा रहे थे।

पिशाचोंके घेरेमें उनके लिये मार्ग बन गया। उन

किया। उन्हें कुछ पता नहीं। वे तो सीधे गये और जाकर शवके वाम भागमें खड़े हो गये। जैसे एक मूर्ति खड़ी हो। उनकी चलती पलकें उन्हें जीवित बता रही थीं। उनका मुख कह रहा था कि वह अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। सब समझकर भी कुछ कर नहीं पाते। सर्वथा विवश हैं।

कापालिक फिर ठठाकर हँसा। दूसरे ही क्षण पृथ्वीमें सिर रखकर उसने आगतको प्रणाम किया। उसके मस्तकपर रक्त चन्दन लगाया। गलेमें रक्त कनैर पुष्पोंकी माला डाली। आरती की और पैरोंपर जपा कुसुमोंकी अंजलि दी। अब उसने खड्ग उठाया और उसे एक बार शवके दाहिने हाथमें रख दिया।

उसी समय थानेदार अपने सिपाहियोंके साथ वहाँ पहुँचे। कंकाल पिशाचोंकी ओर देखकर उनके मुखसे चीख निकल गयी। उनके तीन सिपाही मूर्छित होकर गिर चुके थे और एक जो सबसे वृद्ध था, आगे बढ़ आया था। उसने बड़ी दृढताका परिचय दिया। थानेदारके कंधोंको उसने झकझोरा और उनकी पिस्तौल जो हाथसे छूटकर गिर गयी थी, उठाकर उनके हाथोंमें दे दी।

पिशाचोंकी कंकाल मूर्तियोंने इधर देखातक नहीं। परंतु वे घेरा बनाकर खड़े थे। दुहरी-तिहरी पंक्ति नहीं, पूरी भीड़ थी उनकी। उनको पार करके जानेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। कापालिकने इधर दृष्टि की, वह हँसा। 'एक नहीं, पाँच बलि और।' जोरसे चिल्लाया और पीली सरसों उसने फिर फेंका। मूर्छित सिपाही उठ खड़े हुए। पिशाचोंने मार्ग छोड़ दिया। खिंचे हुए-से पाँचों चल पड़े और जाकर कृष्णकुमारके पीछे पंक्तिबद्ध खड़े हो गये।

पिशाचोंने इनको भी अभिवादन किया था, परंतु केवल हाथ जोड़कर। कापालिकने एक ही बार हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। इनकी पेटियाँ खोलकर अलग रख दीं। साफे उतार दिये। कमीजें तथा जूते, मोजे, पट्टियाँ और आधे पाजामे सबने कापालिकके आदेशपर स्वयं इस प्रकार उतार दिये, जैसे सैनिक अपने नायकका आदेश पालन करता है। सबके मस्तकोंपर रक्तचन्दन लगा। कनैर पुष्पकी मालाएँ नहीं थीं। कापालिकने इनके सिरोंपर दो-दो कनैर पुष्प रख दिये।

'ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्' वह शवके दाहिनी ओर बैठ गय एक घुटना भूमिमें रखकर वीरासनसे। शवके अंगार-नेत्र खुले थे। कापालिकने हाथ फैलाया और शवने दाहिन हाथ उठाकर खड्ग उसके हाथोंपर दे दिया। वह उठ खड़ा हुआ। 'जो तुझे सबसे अधिक प्रिय हो, उसक ध्यान कर ले!' उसने कृष्णकुमारसे कहा। एक क्षण खड्ग लिये वह सम्मुख खड़ा रहा।

कंसारि जय जय मुरारि जय जय।
माधव मुकुन्द हरि बिहारि जय जय॥

कृष्णकुमार आश्चर्यसे ठक् रह गये। भय पता नही क्या हो गया। यह आकाशमें सहस्र-सहस्र कण्ठोंसे कौन उनके पिताकी प्रिय ध्वनि पुकार रहा है ताल-स्वरमें! उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये और उसी स्वरमें स्वर मिलाकर गा उठे। तल्लीन हो गये वे।

उन्होंने नहीं देखा कि कापालिकने खड्ग उठाय है। उन्होंने नहीं देखा कि पिशाचोंकी मण्डली करुण चीत्कार करके सहसा ऐसी लुप्त हो गयी है, जैसे खरगोशके सिरसे सींग। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि वह शव इतने जोरसे चिल्लाया कि श्मशानके शृगाल भी पूँछ उठाकर मीलभर दूर भाग गये भयके मारे उन्होंने नहीं देखा कि शव 'ओह, मार डाला दुष्टने! कहता उठा और उसने कापालिकको पकड़कर उसी प्रकार कच-कच करके चबा डाला, जैसे कोई मूली ख गया हो। उस कापालिकके शरीरसे एक बिन्दु भी रक्त नहीं निकला!

उन्होंने तो सुना कि कोई बड़े मधुर स्वरसे पुका रहा है 'भैया, आ मेरे साथ!' वे उसी अज्ञात अदृश्यके पीछे चल पड़े और जब पूर्णत: अपने-आपमें आये तो देखा कि भीतरसे कीर्तनकी तुमुल ध्वनि आ रही है और वे अपने भवनके द्वारपर खड़े हैं। वे तो यह सब स्वप्न ही मानते यदि प्रात: सीधे श्मशानसे अरुणोदयमें ही आकर थानेदार साहब सिपाहियोंके साथ रात्रिकी घटनाक विवरण न सुनाते।

आरोग्य-चर्चा—

ऋतु-अनुसार खान-पान उत्तम स्वास्थ्यका आधार

(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)

लोकमें चन्द्रमा अपनी शीत-किरणोंसे पृथ्वीको क्लिन्न (आर्द्र) करता है और सूर्य अपनी उष्ण किरणोंसे उसे सुखाता है। वायु चन्द्र और सूर्य दोनोंका आश्रय लेकर प्रजाका पालन करता है। हमारे देशकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यहाँके लोगोंको छः ऋतुओंका आनन्द मिलता है। प्रत्येक ऋतुका प्रभाव जगत्के साथ-साथ मनुष्यकी शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओंपर भी पड़ता है। सूर्यके मकर राशिमें प्रवेश करनेसे उत्तरायणका प्रारम्भ होता है और सूर्यका बली होना शुरू हो जाता है। इस कालमें वातावरणमें रुक्षता बढ़नी शुरू हो जाती है। शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म इस क्रमसे चलते हुए अन्तमें रुक्षता अपनी पराकाष्ठापर हो जाती है। सूर्य उत्तरकी ओर गमन करते हुए अपनी किरणोंसे जगत्के स्नेह-अंशका शोषण करना प्रारम्भ करता है। कर्क राशिमें सूर्यका प्रवेश दक्षिणायनके प्रारम्भका सूचक है और इस कालमें चन्द्रमा बली होकर मनुष्यके बलकी वृद्धि करता है। वर्षा, शरद् और हेमन्त ऋतुओंमें क्रमशः मनुष्यके बलकी वृद्धि होती है। ग्रीष्म और वर्षा-ऋतुमें मनुष्यका बल हीन होता है जबकि वसन्त और शरद्-ऋतुमें बल मध्यम अवस्थामें होता है और हेमन्त एवं शिशिर-ऋतुमें मनुष्यका बल अपनी उच्च पराकाष्ठापर होता है। भारतके उन स्थानोंपर जहाँ सर्दी कम पड़ती है और वर्षा-ऋतु लम्बी होती है, वहाँ शिशिर-ऋतु नहीं होती और वर्षा-कालके प्रारम्भिक कालको प्रावृट्-ऋतुके नामसे जाना जाता है। शीतकालमें दिन छोटे होते हैं और रातें लम्बी होती हैं, जबकि ग्रीष्मकालमें दिन लम्बे होते हैं और रातें छोटी होती हैं।

ऋतुओंके कारण वातावरण होता है प्रभावित— हेमन्त-ऋतुमें उत्तर दिशाकी शीतल वायु चलती है। हेमन्त-ऋतुके बाद शिशिर-ऋतु अधिक शीत होती है वायुसे व्याप्त रहती हैं। वसन्तु-ऋतुमें सभी दिशाएँ निर्मल तथा धरती वन-उपवनसे शोभायमान रहती है वसन्तमें नये पत्ते अंकुरित होते हैं, जबकि पतझड़में कुछ वृक्ष बिलकुल पत्रविहीन हो जाते हैं। ग्रीष्ममें दिशाएँ प्रज्वलित प्रतीत होती हैं। ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्य तीक्ष्ण किरणोंवाला होता है और नदियोंका जल-प्रवाह अल्प हो जाता है। वर्षा-ऋतुमें नदियाँ जलसे परिपूर्ण होकर अपने प्रबल प्रवाहसे किनारेपर स्थित वृक्षोंको उखाड़ देती हैं। शरद्-ऋतुमें सूर्य पिंगल वर्णका तथा उष्ण रहत है। आकाश श्वेत बादलोंसे निर्मल रहता है।

ऋतु-अनुसार खान-पान— हेमन्त-ऋतुमें शीत अधिक होनेसे शरीरके बाहर एक आवरण बन जाता है इससे शरीरकी गर्मी बाहर नहीं निकलती और अन्दर-अन्दर ही इकट्ठी होती रहती है। जठराग्नि बढ़नेसे न केवल भूख अधिक लगती है, अपितु व्यक्ति देरीसे पचनेवाली वस्तुओंको आसानीसे पचानेमें सक्षम हो जाता है। हेमन्त-ऋतुमें स्निग्ध भोजन करना हितकारक है और लवण, क्षार तथा तिक्त, अम्ल और कटु रस, घृत-तैलयुक्त तथा उष्ण भोजन करना प्रशस्त है। नय अन्न, जिसका सेवन अन्य ऋतुओंमें निषिद्ध है, उसक प्रयोग हेमन्त-ऋतुमें किया जा सकता है। इसीलिये सर्दियोंमें घरोंमें पिन्नी, हलवा आदि वस्तुओंके सेवनक प्रचलन है। शिशिर-ऋतुमें शीत अधिक होती है और इसमें हेमन्त-ऋतुकी चर्याका पालन किया जाता है वसन्त-ऋतुमें अम्ल, लवण, मधुर तथा स्निग्ध वस्तुओंक प्रयोग मना है। वसन्त-ऋतुमें व्यायाम, उबटन, गुनगुने जलका प्रयोग हितकर है। जौ तथा गेहूँका प्रयोग इस ऋतुमें निर्दिष्ट है। ग्रीष्म-ऋतुमें मधुर तथा शीत वस्तुओंक प्रयोग करना चाहिये। इस ऋतुमें घी, दूध और शालि चावलोंका सेवन करना चाहिये। लवण, अम्ल तथा कटु

ग्रीष्म-ऋतुमें दिनमें सोना हितकर है, जबकि अन्य ऋतुओंमें दिनमें सोना हानिकारक है।

वर्षा-ऋतुमें जलमें घोले हुए सत्तू, दिनमें सोना, ओस, नदियोंके जलके सेवनका त्याग कर देना चाहिये। सभी प्रकारके अन्नपानको प्रायः मधु मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। वायु एवं वर्षासे प्रभावित दिनमें अधिक शीत होनेपर वायुकी शान्तिके लिये जिसमें अम्ल, लवण तथा स्निग्ध अधिक व्यक्त हो, ऐसा भोजन करना चाहिये। पुराने जौ और गेहूँ तथा शालि चावलोंका प्रयोग करना चाहिये। शरद्-ऋतुमें मधुर, लघु, शीतल, तिक्तरस-प्रधान तथा जिससे पित्तका शमन हो सके, ऐसे भोजनका सेवन करना चाहिये। इस ऋतुमें तिक्त यथा—नीम, पटोल आदि कड़वे द्रव्योंसे सिद्ध घृतपानके साथ-साथ विरेचन तथा रक्तमोक्षण कराना चाहिये।

ऋतुओंके दोषोंका प्रभाव—स्वाभाविक रूपसे प्रत्येक ऋतुमें किसी-न-किसी दोषका प्रकोप होता है और किसी दोषकी शान्ति होती है। शरद् कालमें पित्तज तथा वर्षाकालमें वातज एवं वसन्तकालमें वातज रोग स्वभावसे होते हैं। वर्षा-ऋतुमें संचित हुआ पित्तदोष शरद्-ऋतुमें प्रकुपित होता है। शरद्-ऋतुमें हुआ पैत्तिक ज्वर तथा वसन्त-ऋतुमें हुआ कफज ज्वर सुखसाध्य होता है। हेमन्त-ऋतुमें संचित दोषको वसन्त-ऋतुमें, ग्रीष्म-ऋतुमें संचित दोष अभ्रकालमें, वर्षा-ऋतुमें संचित दोषको शरद्-ऋतुमें बाहर निकालनेसे शरीर शुद्ध हो जाता है और व्यक्ति उन-उन ऋतुओंमें होनेवाले रोगोंसे आक्रान्त नहीं होता।

औषधके पर्याप्त लाभके लिये ऋतु-अनुसार संग्रह करना आवश्यक—औषधियाँ वर्षा-ऋतुके प्रभावसे अल्प वीर्यवाली हो जाती हैं। वही औषधियाँ हेमन्त-ऋतुके प्रभावसे बलवान् हो जाती हैं। ग्रीष्म-ऋतुमें औषधियाँ सारहीन हो जाती हैं। सौम्य औषधियोंको सौम्य ऋतुमें तथा आग्नेय औषधियोंको आग्नेय ऋतुओंमें ग्रहण करना चाहिये। औषधिके रूपमें अगर पत्ते लेने हों तो उनका संचयन वर्षा और वसन्त-ऋतुमें करना चाहिये। उनकी गुणवत्ता इस ऋतुमें सबसे श्रेष्ठ होती है। वनस्पतिके त्वक् (छाल), कन्द तथा क्षीरको शरद्-ऋतुमें, सार भाग हेमन्त-ऋतुमें मूल ग्रीष्म ऋतुमें एकत्रित करनी चाहिये।

पथ्य-अपथ्य—हेमन्त-ऋतुमें उष्ण जल और ग्रीष्म ऋतुमें शीतल जल पीना चाहिये। शरद्-ऋतुमें जल सबसे अधिक निर्मल होता है। मनुष्यको अग्निवृद्धि तथा रोगोंके शमनके लिये प्रावृट्, शरद् तथा वसन्त-ऋतुओंमें भलीभाँति स्नेहपान करवाना चाहिये। राजा या राजाके तुल्य व्यक्तियोंको शरद्-ऋतुमें जलका संग्रह करके उसका प्रयोग करना चाहिये। हेमन्त-ऋतुमें सरोवरका जल पीना चाहिये। वसन्त-ऋतुमें कुएँ अथवा झरनेका पानी पीना चाहिये। शरद्-ऋतुमें किसी भी प्रकारका जल पिया जा सकता है। ग्रीष्म और शरद्-ऋतुमें इच्छानुसार जितनी मर्जी मात्रामें जल पिया जा सकता है, जबकि शेष ऋतुओंमें जल अधिक नहीं पीना चाहिये।

चिकित्सकीय निर्देश—शरद्-ऋतुके प्रभावसे रक्त दूषित हो जाता है। इसलिये रक्तमोक्षण करना उचित है। इस कालमें रक्तदान करनेसे दो प्रयोजनकी सिद्धि होती है। स्वयंका स्वास्थ्य ठीक रहता है और किसीके प्राण बचानेहेतु रक्तकी पूर्ति होती है। आकाशपर बादल न होनेपर प्रावृट्, शरद् तथा वसन्त-ऋतुमें नाकमें अणु तैल डालना चाहिये। शरद् और ग्रीष्म-ऋतुके अतिरिक्त शेष ऋतुओंमें अग्निकर्म करना चाहिये। शरद्, ग्रीष्म तथा वर्षा-ऋतुमें व्रणपर की गयी पट्टी दूसरे दिन खोलनी चाहिये एवं हेमन्त, शिशिर तथा वसन्तमें की गयी पट्टी तीसरे दिन खोलनी चाहिये। व्रण अगर पित्तदुष्टिसे है, तो शरद्-ऋतुमें दिनमें दो बार और कफदुष्टिसे है, तो हेमन्त और वसन्त-ऋतुमें तीसरे दिन व्रणको बाँधना चाहिये।

सुभाषित-त्रिवेणी

धर्मका त्याग न करे

[Never giveup your Dharma]

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि
पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः॥

तात! अब मैं तुम्हें बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोपरि पुण्यजनक बात बता रहा हूँ—कामनासे, भयसे, लोभसे तथा इस जीवनके लिये भी कभी धर्मका त्याग न करे।

Brother! I now advise about the most important and blissful fact of life: Never give up your *Dharma* because of an insatiable desire, fear, greed, and even for the sake of your life.

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये
सन्तुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः॥

धर्म नित्य है, किंतु सुख-दुःख अनित्य हैं, जीव नित्य है, पर इसका कारण (अविद्या) अनित्य है। आप अनित्यको छोड़कर नित्यमें स्थित होइये और सन्तोष धारण कीजिये; क्योंकि सन्तोष ही सबसे बड़ा लाभ है।

Dharma alone is eternal. Happiness and sorrow are transitory. And so are human beings, birds, and animals or whatever lives. Do not settle down for the transient in preference to the eternal. Be contented because contentment brings peace and a wealth of joy.

महाबलान् पश्य महानुभावान्
प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान्
गतान्नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य॥

धन-धान्यादिसे परिपूर्ण पृथ्वीका शासन करके अन्तमें समस्त राज्य और विपुल भोगोंको यहीं छोड़कर यमराजके वशमें गये हुए बड़े-बड़े बलवान् एवं महानुभाव राजाओंकी ओर दृष्टि डालिये।

"Think of the mighty kings who at the end of their glorious reins, leaving behind their kingdoms and the ultimate in luxury they had enjoyed, surrendered to Yamaraja. Their treasuries were full. They were Powerful kings. Yet they could not escape death.

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या
उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति
चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति॥

राजन्! जिसको बड़े कष्टसे पाला-पोसा था, वह पुत्र जब मर जाता है तो मनुष्य उसे उठाकर तुरन्त अपने घरसे बाहर कर देते हैं। पहले तो इसके लिये बाल छितराये करुण स्वरमें विलाप करते हैं, फिर साधारण काठकी भाँति उसे जलती चितामें झोंक देते हैं।

Rajan! When a son brought up with loving care and effort dies, we take his body out of the home. We moan grievously. And, later like a log of wood we mount his body onto a pier into the flames.

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते
वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र
पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः॥

मरे हुए मनुष्यका धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीरकी धातुओंको पक्षी खाते हैं या आग जलाती है। यह मनुष्य पुण्य-पापसे बँधा हुआ इन्हीं दोनोंके साथ परलोकमें गमन करता है।

Others enjoy the wealth of the deceased. The birds pick at his bones or the fire devours it. Only the good deeds or the evil ones travel with him to the other world.

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य-उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ७।१६ बजेतक	सोम	मूल रात्रिमें ३।१२ बजेतक	५ जून	**मूल** रात्रिमें ३।१२ बजेतक।
द्वितीया ,, ५।२० बजेतक	मंगल	पू०षा० ,, १।५० बजेतक	६ ,,	**भद्रा** सायं ४।१४ बजेसे रात्रिमें ३।१० बजेतक।
चतुर्थी रात्रिमें १२।४९ बजेतक	बुध	उ०षा० ,, १२।१८ बजेतक	७ ,,	**मकरराशि** प्रात: ७। २७ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्दशीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०।१८ बजे।
पंचमी ,, १०।२२ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, १०।४० बजेतक	८ ,,	**मृगशिराका सूर्य** रात्रिमें १।० बजे।
षष्ठी ,, ७।५४ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, ८।५८ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।५४ बजेसे, **कुम्भराशि** दिनमें ९।४९ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ९।४९ बजे।
सप्तमी सायं ५।२९ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, ७।२७ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** प्रात: ६।४१ बजेतक।
अष्टमी दिनमें ३।१२ बजेतक	रवि	पू०भा० सायं ५।५५ बजेतक	११ ,,	**मीनराशि** दिनमें १२।१८ बजेसे।
नवमी ,, १।७ बजेतक	सोम	उ०भा० ,, ४।३९ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।१४ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ४।३९ बजेसे।
दशमी ,, ११।२१ बजेतक	मंगल	रेवती दिनमें ३।४५ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।२१ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें ३।४५ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें ३।४५ बजे।
एकादशी ,, ९।५५ बजेतक	बुध	अश्विनी ,, ३।१० बजेतक	१४ ,,	**योगिनी एकादशीव्रत** (सबका), **मूल** दिनमें ३।१० बजेतक।
द्वादशी ,, ८।५४ बजेतक	गुरु	भरणी ,, ३।१ बजेतक	१५ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें ९।६ बजे, **प्रदोषव्रत, मिथुनसंक्रान्ति** रात्रिमें १।१५ बजे।
त्रयोदशी ,, ८।२२ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, ३।२१ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।२२ बजेसे रात्रिमें ८।२१ बजेतक।
चतुर्दशी ,, ८।२१ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, ४।१० बजेतक	१७ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिशेष ४।५१ बजेसे, **श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या दिनमें ८।५१ बजेतक	रवि	मृगशिरा सायं ५।३१ बजेतक	१८ ,,	**अमावस्या।**

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।४८ बजेतक	सोम	आर्द्रा रात्रिमें ७।१९ बजेतक	१९ जून	× × × × ×
द्वितीया ,, ११।१४ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, ९।३१ बजेतक	२० ,,	**कर्कराशि** दिनमें २।५८ बजेसे, **श्रीजगदीश-रथयात्रा।**
तृतीया ,, १२।५९ बजेतक	बुध	पुष्य ,, ११।५९ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।५९ बजेसे, **सायन कर्कका सूर्य** रात्रिमें ३।३७ बजे, **मूल** रात्रिमें ११।५९ बजेसे।
चतुर्थी ,, २।५८ बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, २।३६ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें २।५८ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, आद्राका सूर्य** रात्रिमें १।४८ बजे।
पंचमी सायं ४।५९ बजेतक	शुक्र	मघा रात्रिशेष ५।११ बजेतक	२३ ,,	**मूल** रात्रिशेष ५।११ बजेतक।
षष्ठी ,, ६।५४ बजेतक	शनि	पू०फा० अहोरात्र	२४ ,,	× × × × ×
सप्तमी रात्रिमें ८।३२ बजेतक	रवि	पू०फा० प्रात: ७।३५ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।३२ बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें २।६ बजेसे।
अष्टमी ,, ९।४६ बजेतक	सोम	उ०फा० दिनमें ९।४० बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।९ बजेतक।
नवमी रात्रिमें १०।३३ बजेतक	मंगल	हस्त ,, ११।१८ बजेतक	२७ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १२।५४ बजेसे।
दशमी ,, १०।४९ बजेतक	बुध	चित्रा ,, १२।२९ बजेतक	२८ ,,	× × × × ×
एकादशी ,, १०।३३ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, १।१० बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।४१ बजेसे रात्रिमें १०।३३ बजेतक, **हरिशयनी एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ९।४९ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, १।२१ बजेतक	३० ,,	**वृश्चिकराशि** प्रात: ७।१८ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८।३७ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, १।४ बजेतक	१ जूलाई	**शनिप्रदोषव्रत, मूल** दिनमें १।४ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ७।२ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, १२।२२ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।२ बजेसे, **धनुराशि** दिनमें १२।२२ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा सायं ५।७ बजेतक	सोम	मूल ,, ११।२० बजेतक	३ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।४ बजेतक, **पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, मूल** दिनमें ११।२०

कृपानुभूति

श्रीहनुमत्कृपा

मैंने १९८७ ई० में श्रीरामजन्मभूमि-मुक्ति-आन्दोलनके समय गीताप्रेसकी श्रीरामचरितमानस खरीदी थी, लेकिन पढ़नेका संयोग नहीं लगा। बात नवम्बर २०१० ई०की होगी। टी०वी० चैनलपर श्रीरामचरितमानसका पाठ हो रहा था, मुझे बहुत अच्छा लगा और जिज्ञासा हुई कि यह कौन-सा प्रसंग चल रहा है? किंतु रामायणका ज्ञान न होनेके कारण मुझे समझमें नहीं आ रहा था।

मेरे एक मित्र रात्रिमें अपने वृद्ध माता-पिताको रामचरितमानसका पाठ सुनाया करते थे। टी०वी०की आवाज तेज करके मैंने अपने उन्हीं मित्रको फोनकर पूछा कि यह रामचरितमानसका कौन-सा प्रसंग चल रहा है? उन्होंने बताया कि यह तो रामजीकी स्तुति है। यह सुनकर पासमें बैठी मेरी पत्नीने कहा कि ये तो बीचमेंसे पढ़ रहे हैं। रामजीकी स्तुति तो नहीं है। मैंने अपनी पत्नीसे रामचरितमानस लेकर आनेके लिये कहा।

मैंने बचपनसे सुन रखा था कि श्रीहनुमान्‌जीका स्मरण करके रामजीका काम आरम्भ करना चाहिये। इसलिये मैंने हनुमान्‌जीका स्मरण करके श्रीरामचरितमानसको खोला तो चमत्कार यह हुआ कि रामचरितमानसका वही पेज खुल गया, जहाँसे टी०वी०पर मानसका पाठ चल रहा था। वह पेज संख्या ५८८ की चौपाई थी। उस दिनसे प्रतिदिन टी०वी० पर रामचरितमानसके पाठके प्रसारणके साथ-साथ मैं भी मानसका पाठ करने लगा। पाठ सम्पूर्ण होनेके बाद पुनः प्रसारण शुरू हो गया तथा संयोग देखिये कि पुनः पेज संख्या ५८८ पर पहुँचनेके बाद हमारी केबलसे वह चैनल ही हट गया। इस प्रकार हनुमान्‌जीकी कृपासे मेरा पहली बार मानसपाठ पूर्ण हो सका।

वर्ष २०११ ई०में मेरे पूज्य पिताजीका स्वर्गवास हो गया। इस घटनासे मैं काफी खिन्न रहने लगा था। मेरे वही मित्र प्रत्येक शनिवार तथा मंगलवारको अपने घरपर सुन्दरकाण्डका पाठ किया करते थे। उन दिनोंकी मेरी खिन्न मनःस्थितिको समझकर उन्होंने मुझे अपने घर बुलाकर पाँच बार सुन्दरकाण्डमें अपने साथ बिठाया। उसके बाद मैं भी अपने घरपर प्रत्येक शनिवार तथा मंगलवारको पत्नीके साथ सुन्दरकाण्डका पाठ करने लगा। संयोगसे ५ अप्रैल, २०१२ ई०को हनुमान्-जयन्तीको हम २७ बार सुन्दरकाण्डका पाठ कर चुके थे। हमने सोचा थ कि अब आगे यह निभ नहीं पायेगा। अतः हनुमान्-जयन्तीको प्रसाद बाँटकर हनुमान्‌जीसे प्रार्थना कर लेंगे कि बाबा! अब आप जब फिर कहेंगे, तब फिर कर लेंगे। यह सोचकर सुन्दरकाण्डके सामूहिक पाठका आयोजन किया किंतु उसी रात्रिमें हमें प्रेरणा हुई कि हमें अपने पूज्य पिताजीके निमित्त अब रामचरितमानसका मासपारायण करना चाहिये। अतः हमने रामचरितमानसका मासपारायण करना आरम्भ कर दिया, जो बाबाकी कृपासे निर्विघ्न एक मासमें सम्पूर्ण हो गया। अब मुझे लगने लगा कि रामचरितमानसमें अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जिनका हम दैनिक जीवनमें उपयोग कर सकते हैं। हमारी ही तरह सामान्य जन श्रीरामचरितमानसको श्रद्धासे अपने घरोंमें तो रखता है, किंतु पाठ नहीं कर पाता। अतः ऐसे प्रसंगोंका संकलन करके सर्वसाधारणको सुलभ कराना चाहिये। यह सोचकर हमने पुनः रामचरितमानसका पाठ करना आरम्भ कर दिया। इस बार जहाँपर भी मुझे कोई लोकोक्ति किसी दोहे या चौपाईमें समझ आती, उसको मैं मार्कर पेनसे मार्क कर देता था। मैं इस संकलनको अपने पूज्य पिताजीकी पुण्यस्मृतिमें प्रकाशित कराना चाहता था, किंतु हिन्दीमें टाइप करनेवाला कोई व्यक्ति ढूँढ़नेसे भी नहीं मिल रहा था। कई दिनोंकी खोजके बाद हारकर मैंने श्रीहनुमान्‌जीका स्मरण करके स्वयं ही पहली बार हिन्दीमें टाइप करनेका अभ्यास प्रारम्भ किया। मैंने कम्प्यूटरपर टाइप सीखनेके लिये किसीकी सहायता नहीं ली। केवल राम। श्रीराम सीता राम। श्रीराम जय राम जय जय राम तथा हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ आदि रामनामके शब्दोंकी ही प्रैक्टिस की। चमत्कार यह हुआ कि आयुके ५५वें वर्षमें बिना किसी व्यक्तिके मार्गदर्शनके केवल १० दिनोंमें ही मेरी हिन्दीकी टाइपकी प्रैक्टिस इतनी हो गयी कि ग्यारहवें दिन ही मैंने हनुमानचालीसाको कम्प्यूटरपर टाइप कर लिया। जबकि पिछले अनेक वर्षोंसे मुझे हाथ काँपनेकी समस्या थी, यह सब बाबा हनुमान्‌जीकी कृपा ही है।

—गजेसिंह 'नापित

पढ़ो, समझो और करो

[१]

'परमार्थका कोई अवसर हाथसे न जाने दें'

यह घटना वर्ष १९९० की है। मैंने उस वर्ष वेतनसे प्रतिमाह नियमित बचत करके एक नयी मोटरसाइकिल क्रय की थी। मेरे कार्यालयमें साथ कार्य करनेवाले एक सहकर्मीके बेटेकी शिकायत उसके विद्यालयसे आयी थी। संयोगसे उस छात्रके कक्षाध्यापक मेरे पुराने परिचित थे। मेरे सहकर्मीको इस बातकी जानकारी थी। अत: वह मुझे अपने साथ विद्यालय ले जाना चाहते थे।

दोपहरके भोजनावकाशके दौरान विद्यालय चलनेका निश्चित हुआ। मैं और मेरे सहकर्मी इसी नयी मोटरसाइकिलपर बैठकर विद्यालयकी ओर रवाना हुए।

मार्गमें किसी अन्य स्कूलके बच्चोंका एक समूह स्कूलकी छुट्टी होनेके बाद अपने-अपने घरोंकी ओर बढ़ रहा था। अचानक कुछ बच्चोंकी साइकिलें आपसमें टकराकर गिरती हैं और इसीके फलस्वरूप मेरी मोटरसाइकिल भी अनियन्त्रित होकर गिर जाती है। इसी मोटरसाइकिलमें पीछे एक मजबूत कपड़ेका बैग बँधा था, जिसके अन्दर मेरा एक चमड़ेका अन्य बैग रखा था। इस चमड़ेके बैगमें मेरी नयी मोटरसाइकिलके सभी प्रपत्र, मेरा ड्राइविंग लाइसेंस, बीमाके कागजात, बैंक पासबुक, चेकबुक तथा मेरे अन्य महत्त्वपूर्ण पेपर रखे थे। मुझे अथवा मेरे सहकर्मीको इस बातका ज्ञान न हो सका कि मेरा बैग गिर चुका है। यह वह समय था, जब ओरिजिनल प्रपत्र ही हर समय माँगे जाते थे, आजके समयका डिजिटल दस्तावेज उस समय कहाँ सम्भव था।

विद्यालय पहुँचनेपर मोटरसाइकिलसे उतरनेके बाद जब इस बातका पता चला कि मेरा दस्तावेजवाला चमड़ेका बैग गाड़ीके पीछे बँधे कपड़ेके बैगके साथ नदारद है, तो आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। अब मैंने जल्दी अपने मित्र और बालकके कक्षाध्यापकसे भेंटकर मामला निपटाया गया।

मेरे दिमागकी बत्ती बुझ गयी थी। स्वयंको मन-ही-मन कोस भी रहा था कि इस व्यर्थके परमार्थके कार्यमें मैं क्यों कर फँसा? उसी मार्गसे वापस लौटा, किंतु वह कपड़ेका बैग, जो मेरी गाड़ीमें बँधा था, उसका कोई सूत्र नहीं मिल सका। जहाँ उन बच्चोंकी साइकिलें टकरायी थीं, उसी जगह पहुँचकर खूब खोज-बीन की, किंतु कोई नतीजा नहीं निकला।

अब सोचने लगा, इस मूर्खतापूर्ण गलतीको घरवालोंको कैसे बताऊँ? इस बातसे भी संशयमें था कि मेरी बैगमें शायद और कौन-कौनसे अन्य महत्त्वपूर्ण पेपर रखे हों? उन खोये पेपरके डुप्लीकेट पेपर कैसे बनेंगे, इत्यादि।

अब घटनाको २-३ दिन बीत चुके थे। रविवारका दिन था और मैं अपने घरकी छतपर इसी उधेड़बुनमें खड़ा अपने बैगके विषयमें ही सोच रहा था। इसी समय मेरे निवासके नीचे एक स्कूटर रुकता है और एक सज्जन मेरा नाम पूछते हैं। जब वह सज्जन मेरी पहचानके बारेमें एकदम सन्तुष्ट हो जाते हैं, तो वह मुझे मेरा खोया बैग दिखाते हैं। उस बैगको देखकर मेरी जानमें जान आ जाती है और उन सज्जनको अपने घर ले आता हूँ।

वह देवदूत-जैसे सज्जन लगभग १० किलोमीटरसे अधिक गाड़ी चलाकर मेरे घर केवल बैग वापस करने आये थे। मैंने उन सज्जनका हार्दिक आभार व्यक्त किया। मुझे इस बातका आभास हो रहा था कि इन प्रपत्रोंके डुप्लीकेट बनवानेमें मुझे कितने पापड़ बेलने पड़ते? मुझे स्वयंकी झुँझलाहटपर भी ग्लानि हुई कि जब मैं परमार्थके कार्यमें जानेके लिये स्वयंको कोस रहा था। सच है, परमार्थका कोई भी अवसर हाथसे नहीं निकलने

[२]

जय-पराजयका कर्ता ईश्वर है

स्वामी श्रीभास्करानन्द सरस्वतीजी महाराज सिद्ध सन्त थे। भारतवर्षके अनेक राजा-महाराजा इनके दर्शनके लिये आते थे। १८९८ ईस्वीके २० दिसम्बरको भारतसरकारके तत्कालीन सेनाके सर्वोच्च अधिकारी जंगी लाट (कमाण्डर इन चीफ)-का आगमन स्वामीजीके दर्शनके निमित्त काशीके 'आनन्द बाग' में हुआ। जंगी लाटका नाम था सर विलियम लाकहर्ट, जिन्होंने अफगान युद्धमें बहादुर अफरीदियोंको अपनी सैनिक योग्यता एवं वीरताके कारण परास्त किया था और इसी कारण वे विश्वभरमें अंग्रेजी शासनकी प्रतिष्ठाके उन्नायकोंमें गिने जाने लगे थे। लाट साहबके साथ उनकी पत्नी, उनके सैनिक सचिव कर्नल वी० डफ०, काशीके कलक्टर तथा कमिश्नर सब दल-बलके साथ उपस्थित थे। जंगी लाटके लिये स्वामीजीके आवासपर आना कोई नयी बात न थी, क्योंकि इससे पूर्व भी अनेक वाइसराय (बड़ा लाट) स्वामीजीके दर्शनके लिये आये थे और दर्शनकर अपनी अभिलाषा पूरी की थी। स्वामीजीने उनका बड़ा स्वागत किया और अपने द्वारा उपहारमें दी गयी मालाएँ लाटसाहब तथा उनके साथियोंको पहना दीं। वार्तालापका क्रम आरम्भ हुआ। लाटसाहब अफरीदियोंको परास्त करनेमें अपनी बहादुरीकी डींग हाँकते हुए अभिमानसे फूल गये और उसका प्रदर्शन भी उन्होंने अपने उच्च स्वरसे बड़ी भावुकतासे कर दिखलाया।

स्वामीजी वृत्तान्त सुनकर मुसकराते रहे। इस समय एक ऐसी घटना घटी, जिसे सुनकर तथा देखकर श्रोता आश्चर्यचकित हो उठे। उस समय वहाँ एक पेन्सिल पड़ी हुई थी। स्वामीजीने लाटसाहबसे उसे उठाकर उन्हें देनेके लिये कहा। लाटसाहब उठकर उस पेन्सिलको उठाने लगे। परंतु आश्चर्य, महान् आश्चर्य! वह पेन्सिल टस-से-मस नहीं हुई। उतने बड़े अभिमानी विजयी सेनापतिके अनेक प्रयत्न करनेपर भी अपने स्थानसे टली किया। उन्होंने कहा—तुमने युद्धमें जय-लाभ किया है, इस प्रकारकी भावना मत करो। जय-पराजयका कर्ता तो केवल एक ईश्वर है। मैंने जिस प्रकार तुम्हारी शक्तिका हरण कर लिया, वे भी उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धिका हरण कर सकते थे। ऐसा होनेपर जिस कौशलके बलपर तुमने अफरीदियोंको पराजित किया है, वह बुद्धि युद्धमें कथमपि उपस्थित ही नहीं हो सकती थी। फलतः ईश्वरके ऊपर ही सबको निर्भर करना चाहिये। जय-पराजयका, शक्तिके ह्रास तथा वृद्धिका वही एकमात्र स्वामी है। मनुष्य तो उसके हाथका एक कठपुतला है—ईश्वरके ऊपर भरोसा रखो, अभिमानका कोई अवसर नहीं।

लाक हर्ट साहब स्वामीजीके बड़े आस्थावान् भक्त थे, वे उनके इस उपदेशसे बड़े ही प्रभावित हुए।

[आचार्य पं० श्रीबलदेवजी उपाध्यायके संस्मरण]

[३]

फलवालीकी ईमानदारी

लक्ष्मी सात्त्विक और सत्यप्रिय स्त्री है। दोपहरके समय मौसमके फलोंकी फेरी करके कुटुंबकी आमदनीको बढ़ाना उसका पूरक व्यवसाय है। उसके बर्तावकी मधुरताके कारण मुहल्लेके कुटुंबोंके साथ उसका अत्यंत ममताभरा संबंध हो गया था।

मुहल्लेमें बाहरसे एक नया कुटुंब आकर बसा था इस आगंतुक कुटुंबके साथ भी फलवालीका परिचय हो गया। बालकोंका उसके साथ स्नेह हो गया और अच्छे ताजे फल उस कुटुंबके बालकोंके लिये लाना उसका कर्तव्य हो गया।

इस कुटुंबकी स्वामिनी एक दिन शहरमें किसी विवाहके अवसरपर अपने दोनों बालकोंको साथ लेकर गयी। विवाहमें शामिल होकर शामको वापस आयी कुछ चीजें बाजारसे लानी जरूरी थीं; अतएव जरूरी वस्तुओंकी सूची तथा पैसे देकर समीपकी ही एक जानी-पहचानी दूकानपर उन्हें चीजें खरीदकर लाने भेज

हमारे अपने हाथोंसे चीजें खरीदी गयीं, इसके उल्लासमें बच्चे धीरे-धीरे घरकी तरफ लौट रहे थे। इसी बीच दक्षाके गलेकी सोनेकी चेन कहीं गिर पड़ी। दक्षाको ध्यान ही नहीं रहा।

संयोगकी बात—फलवाली लक्ष्मी रात्रिको अपने घर लौट रही थी, उसे अपने पैरके पास चमकती हुई चेन दिखायी दी। उस समय कोई भी मनुष्य था नहीं, जिससे किसीकी चीज खो जाने बाबत पूछा जा सकता। थोड़ी देर दुविधामें रहकर अंतमें लक्ष्मीने वह गहना उठा लिया। ईश्वर इसके असली मालिकको मिला दे तो उसे सौंप देनेके शुभ संकल्पसे उसने घर आकर चेनको सँभालकर रख दिया। 'लक्ष्मी देखकर मुनियोंका मन भी ललचा जाता है।'—इस सीधी-सादी लोकोक्तिको लक्ष्मीबाई जानती थी। इसलिये किसीके सामने इस संबंधकी कुछ भी चर्चा न कर उसने भगवान्‌के सामने हाथ जोड़कर उनसे सच्चा रास्ता बताने और इस जिम्मेवारीसे मुक्त करनेकी प्रार्थना की।

माँका सौंपा हुआ काम झटपट कर डालनेके संतोषके साथ दक्षा और मुकेश घर पहुँचे। दिनभरके मौज-मजे तथा परिश्रमके कारण वे सो गये। जीमे हुए थे, इससे उन्हें नींदमें देखकर माँने कुछ पूछताछ नहीं की और उन्हें आरामसे सोने दिया। परंतु दूसरे दिन सबेरे बच्चे नाश्ता कर रहे थे, उस समय लड़कीके सूने गलेकी तरफ माँका ध्यान गया और माँने पूछा—'बेटा! क्या चेन उतारकर रख दी थी?' लड़कीने चौंककर गलेपर हाथ फिराया और फिर तो बिछौने वगैरह तथा सभी संभावित स्थानोंमें खोज शुरू हो गयी। शामको जिस दूकानपर बालक चीजें खरीदने गये थे, वहाँतकका रास्ता छान डाला, पर कहीं कुछ मिला नहीं।

लड़की 'दक्षा' नामके अनुसार ही सचमुच बड़ी चतुर थी। उसने माँकी सांत्वनाके लिये कहा—'माँ! मुझे जो बरतनेके पैसे मिलते हैं, उनमेंसे अब मैं हर महीने दो रुपये बचाऊँगी, जिससे मुझे इस बातका ध्यान रहेगा।'

इस बीच फलवाली लक्ष्मी बीमार पड़ गयी, अतः उसके फल बेचनेके रोजके धंधेमें कुछ दिनोंका व्यवधान पड़ गया। इस समयमें उसके मनमें दो बातोंको लेकर बेचैनी रहती थी—बालकोंको उनके मनचाहे फल न पहुँचानेकी और अपने पास आयी हुई परायी गहनेकी धरोहर शीघ्र मालिकके पास पहुँचानेकी। जब अच्छी हुई तब नियमित घूमने-फिरने तथा फेरी करके बालकोंको रिझाने लगी। इस नये कुटुंबके आँगनमें आयी, पर बालकोंने फल नहीं लिये। बच्चोंके मनमें कुछ प्रतिकूलता हुई होगी—यह सोचकर लौट गयी। परंतु दूसरे दिन भी बालकोंने कुछ नहीं खरीदा और उनकी माताको उदासमुख बच्चोंकी तरफ दृष्टि डालते देखा, तब उसने कहा—'अभी पैसेका सुभीता न हो तो पीछे दे देना, आप तो मेरे जाने हुए हैं।'

लड़कीकी माँने कहा—लगभग पंद्रह दिन पहले बेबीकी सोनेकी चेन कहीं खो गयी थी। शामतक गलेमें थी। दोनों बच्चे कुछ चीजें खरीदने गये थे, वहीं खो गयी। ढूँढ़नेपर भी कहीं पता नहीं लगा। अपनी चीज सँभालकर रखनेका विशेष ध्यान रहे, इसलिये इसने अपने हाथखर्चमें कोर-कसर करनी शुरू की है।

यह सुनते ही लक्ष्मीके मुखपर हर्षकी ज्योति छा गयी। उसने—ये बच्चे जिन फलोंको पसंद करते थे, वे फल उनको देते हुए कहा—'मेरे ग्राहक बालकोंमें ऐसे समझदार बालक हैं। इनके गुणपर रीझकर ये फल मैं अपनी तरफसे इन्हें दे रही हूँ।' यों कहकर लक्ष्मी चल दी।

लक्ष्मी रात्रिको अपने घरका काम निपटाकर भगवान्‌का स्मरण करके सोनेकी चेन लेकर उस कुटुंबके घर पहुँची। कोई भी विशेष बातचीत न करके गठरी खोलकर चेन निकालकर बोली—'लो बहिन! यही तुम्हारी चेन है न? देख लो।'

लड़की हर्षसे ताली बजाती हुई बोली—'अहा! प्रभुने सचमुच वापस लौटा दी।'

'यह वस्तु इन्हींकी है'—ऐसा विश्वास होनेपर लक्ष्मीके मुखपर भी पूर्ण संतोष छा गया और चेनके असली मालिक मिला देनेके लिये उसने प्रभुका उपकार माना। (अखंड आनंद) — सवाईलाल ई० पंड्या

मनन करने योग्य

अभिमानसे पतन

प्राचीन कालकी बात है—तीनों लोकोंके अधिपति इन्द्र मधुपानसे प्रमत्त और कामासक्त होकर रम्भाके साथ एकान्तमें विहार कर रहे थे। उस कामुकी अप्सराके साथ क्रीडा करनेसे उनका मन मोहित हो गया था। इस प्रकार कामदेवसे मथित मनवाले वे इन्द्र उसी महावनमें स्थित हो गये।

उसी समय इन्द्रने वैकुण्ठधामसे कैलासपर्वतकी ओर जाते हुए महर्षि दुर्वासाको देखा। उनका शरीर ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान था। वेदवेदांगके पारगामी लाखों शिष्य उनके साथ विद्यमान थे।

उन्हें देखकर अति प्रमत्त इन्द्रने सिर झुकाकर मुनि तथा शिष्यवर्गको प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति की। तब शिष्योंसहित मुनि दुर्वासाने इन्द्रको शुभाशीर्वाद दिया, साथ ही उन्होंने भगवान् विष्णुद्वारा प्रदत्त परम मनोहर पारिजात पुष्प भी उन्हें समर्पित किया।

बुढ़ापा, रोग, मृत्यु तथा शोकका नाश करनेवाले और मोक्ष प्रदान करनेवाले उस पुष्पको लेकर राज्य-सम्पदासे मदोन्मत्त इन्द्रने उसे ऐरावत हाथीके मस्तकपर फेंक दिया।

उस पुष्पका स्पर्श होते ही वह ऐरावत हाथी रूप, गुण, तेज तथा आयुमें अकस्मात् भगवान् विष्णुके तुल्य हो गया। तब इन्द्रको छोड़कर वह गजराज घोर वनमें चला गया। हे मुने! अपने तेजोबलसे सम्पन्न इन्द्र उस ऐरावतको रोक पानेमें समर्थ नहीं हो सके।

इन्द्रने उस पुष्पका तिरस्कार किया है—ऐसा जानकर मुनीश्वर दुर्वासा अत्यन्त कुपित हो उठे और रोषमें आकर उन्हें शाप देते हुए कहने लगे। अरे! राज्यश्रीके अभिमानसे प्रमत्त होकर तुम मेरा अपमान क्यों कर रहे हो? मेरे द्वारा दिये गये पुष्पको तुमने गर्वित होकर हाथीके मस्तकपर फेंक दिया? श्रीविष्णुको समर्पित किये हुए नैवेद्य, फल अथवा जलके प्राप्त होते ही उनका उपभोग कर लेना चाहिये, उनका त्याग करनेसे वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है।

जो मनुष्य सौभाग्यसे प्राप्त हुए भगवान् विष्णुके पावन नैवेद्यका त्याग करता है; वह श्री, बुद्धि तथ राज्य—इन सबसे वंचित हो जाता है।

जो भक्त श्रीविष्णुके लिये अर्पित किये गये नैवेद्यको पाते ही उसे ग्रहण कर लेता है, वह अपने सौ पूर्वजोंका उद्धार करके स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है।

जो मनुष्य प्रतिदिन भगवान् श्रीहरिके नैवेद्यको ग्रहण करके उन्हें प्रणाम करता है तथा भक्तिपूर्वक उनका पूजन एवं स्तवन करता है, वह भगवान् विष्णुके समान हो जाता है। हे मूर्ख! उसका स्पर्श करके चलनेवाली वायुका संयोग पाकर तीर्थसमुदाय शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है और उसकी चरणरजसे पृथ्वी शीघ्र ही पवित्र हो जाती है।

यदि चाण्डाल भी भगवान् विष्णुकी उपासन करता है, तो वह अपनी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति न करनेवाला मनुष्य स्वयं अपनी भी रक्षा करनेमें असमर्थ रहता है।

यदि कोई मनुष्य अनजानमें भी श्रीविष्णुका नैवेद्य ग्रहण कर लेता है, वह अपने सात जन्मोंके अर्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जो ज्ञानपूर्वक भक्तिके साथ भगवान् विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करता है, वह तो करोड़ों जन्मोंके अर्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है—यह निश्चित है। हे इन्द्र! तुमने जो अभिमानवश इस पारिजात पुष्पको हाथीके मस्तकपर फेंक दिया है, इस अपराधके कारण लक्ष्मीजी तुमलोगोंका परित्याग करके भगवान् श्रीहरिके लोकमें चली जायँ।

मुनिद्वारा शाप दिये जानेकी बात जानकर दैत्य-दानवोंने स्वर्गलोकपर आक्रमणकर देवताओंसहित इन्द्रको पराभूतकर अमरावती छोड़कर भागनेपर विवश कर दिया। इस प्रकार अभिमान करनेके कारण इन्द्रका पतन हो गया। [श्रीमद्देवीभागवत]

नवीन विशिष्ट प्रकाशन—अब उपलब्ध

संक्षिप्त चित्रमय शिवपुराण (कोड 2318) [ग्रंथाकार, बड़े अक्षरोंमें, चार रंगोंमें, आर्ट पेपरपर] जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर **चित्रमय श्रीरामचरितमानस, चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता एवं चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती**की तरह 215 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित किया गया है।

श्रीमहेश्वर बोले—मैं सृष्टि, पालन और संहारका कर्ता हूँ, सगुण और निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। विष्णो! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्योंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। हरे! वास्तवमें मैं सदा निष्कल हूँ। विष्णो! तुमने और ब्रह्माने मेरे अवतारके निमित्त जो स्तुति की है, तुम्हारी उस प्रार्थनाको मैं अवश्य सच्ची करूँगा; क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ। ब्रह्मन्! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीरसे इस लोकमें प्रकट होगा, जो नामसे 'रुद्र' कहलायेगा। मेरे अंशसे प्रकट हुए रुद्रकी सामर्थ्य मुझसे कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वही यह रुद्र है। पूजाकी विधि-विधानकी दृष्टिसे भी मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है। जैसे ज्योतिका जल आदिके साथ सम्पर्क होनेपर भी उसमें स्पर्शदोष नहीं लगता, उसी प्रकार मुझ निर्गुण परमात्माको भी किसीके संयोगसे बन्धन नहीं प्राप्त होता। यह मेरा शिवरूप

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशकी एकता

प्र० ति० 20-04-2023
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयाल गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

तत्त्व-चिन्तामणि [सातों भाग एक साथ] (कोड 683) ग्रन्थाकार—अलग-अलग सात भागों तथा विभिन्न शीर्षकोंकी तेरह पुस्तकोंमें पूर्वप्रकाशित सरल एवं व्यावहारिक शिक्षाप्रद लेखोंके इस ग्रन्थाकार संकलनमें गीता-रामायण आदि ग्रन्थोंके सार तत्त्वोंका संग्रह है। यह प्रत्येक घरमें अवश्य रखने एवं उपहारमें देनेयोग्य एक कल्याणकारी ग्रन्थ है। मूल्य ₹200, (**कोड 1650**) गुजराती मूल्य ₹ 150 में भी।

साधन-कल्पतरु (कोड 814) ग्रन्थाकार—साधनोपयोगी इस ग्रंथमें श्रीगोयन्दकाजीके अनेक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक लेखोंका संग्रह है। लेखोंकी भाषा सरल, सुबोध है। इसकी मार्मिक और सर्वजनोपयोगी सामग्री सर्व साधारणके लिये भी प्रेरक और मार्गदर्शक है। मूल्य ₹ 200, इसमें संगृहीत तेरह पुस्तकोंका अलग-अलग प्रकाशन भी उपलब्ध है।

नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अनमोल प्रकाशन

भगवच्चर्चा (कोड 820) ग्रन्थाकार—प्रस्तुत ग्रन्थ नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा कल्याणमें समय-समयपर लिखे गये (पुस्तकाकार छः खण्डोंमें पूर्वप्रकाशित) विभिन्न महत्त्वपूर्ण लेखोंका अनुपम संग्रह है। इसमें ईश्वरप्रेम, भगवत्कृपा, भगवद्दर्शन, विनय, भगवान् श्रीराम तथा शिव-लीलाओंका वर्णन, दैवी विपत्तियोंसे बचनेके उपाय, पति-पत्नीके कर्तव्य आदि विविध विषयोंपर अत्यन्त ही सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। सचित्र, सजिल्द, मूल्य ₹230, पूर्वप्रकाशित छः खण्डोंके अलग-अलग संस्करण भी उपलब्ध हैं।

ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी प्रवचन

साधन-सुधा-सिन्धु (कोड 465) ग्रन्थाकार—यह ग्रन्थ ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत लगभग 50 पुस्तकोंका ग्रन्थाकार संकलन है। इसमें परमात्मप्राप्तिके अनेक सुगम उपायोंका सरल भाषामें अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रत्येक देश, वेष, भाषा एवं सम्प्रदायके साधकोंके लिये साधनकी उपयोगी एवं मार्गदर्शक सामग्रीसे युक्त है। मूल्य ₹300, (**कोड 1630**) गुजराती मूल्य ₹ 300 और (**कोड 1473**) ओड़िआ मूल्य ₹ 300 में भी।

साधन-सुधा-निधि [ग्रन्थाकार] (कोड 2197)—प्रस्तुत ग्रंथमें परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके विक्रम-संवत् 2053 से लेकर 2064 तक प्रकाशित अनेक कल्याणकारी पुस्तकोंका संकलन प्रकाशित किया गया है। आध्यात्मिक विषयकी अनेक मार्मिक बातोंसे युक्त यह ग्रंथ साधकोंके लिये बहुत उपयोगी है और शीघ्र एवं सुगमतापूर्वक परमात्मतत्त्वका अनुभव करानेमें अत्यन्त सहायक है। मूल्य ₹ 200

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)